होते हैं, वह पुण्यात्मा चिरकालतक अग्निलोकमें वास करते हैं। जो व्यक्ति यज्ञके उपकरण वस्तु और यज्ञ करनेके लिये यथाशक्ति धन प्रदान करते हैं, वह अर्चिष्मती पुरीमें वास करते हैं। एक अग्नि ही द्विजोंका परम मुक्तिप्रद हुआ है, अग्नि द्विजोंका गुरु है, देवता है, व्रत और तीर्थ है—यह सभी—निर्णीत हुआ है। सभी अपवित्र वस्तु अग्निसंसर्गसे क्षणकालमें पवित्र होती हैं, इसीलिये अग्निका नामान्तर 'पावक, है। जो ब्राह्मण, वेदपाठ करके भी वह्निकी परित्यागपूर्व्वक अन्यत्र अनुरागी होते हैं, वह प्रकृतपक्षमें वेदवेत्ता नहीं होते। यह अग्नि ही साक्षात् अन्तरात्माके नामसे निश्चित हुआ है। वह उदरस्थ भुक्त मांसादि परिपाक करता है सही, किन्तु रमणीगणके गर्भस्थ बालककी परिपाक नहीं करता। प्रत्यक्षगोचरा अग्निस्वरूपा मूर्त्ति ही शम्भुकी तेजसी मूर्त्ति है। यही सृष्टि स्थिति लयकी कर्त्री और इसी मूर्त्तिके अतिरिक्त जगत्में और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। यही चित्रभानु, साक्षात् महेश्वरके चक्षु हैं। घोरान्धकारमय जगत्में इनके अतिरिक्त आलोकदाता और कौन है? अनलभुक्त धूप, दीप, नैवेद्य, दही, दूध, घृत और इक्षुविकार मिष्ट द्रव्य ही अग्निद्वारा स्वर्गमें देवगण ग्रहण करते हैं। शिवशर्म्माने कहा,—यह अग्नि कौन हैं? वह किसके पुत्र हैं? और किस तरह इन्होंने अग्निपद लाभ किया?—यह सब मुझसे कीर्त्तन कीजिये। विष्णु पारिषद-द्वयने कहा,—हे महाप्राज्ञ! सुनो; यह जिसके पुत्र हैं और जिस तरह इन्होंने यह ज्योतिष्मती पुरी पाई है, वह वर्णन करता हूं। पूर्व्वकालमें नर्म्मदाके रमणीय तीरमें नर्म्मपुर नामक नगरमें विश्वानर नामक एक शाण्डिल्यगोत्र पुण्यात्मा शिवभक्त मुनि थे। सर्व्वदा वेदाध्ययनरत, ऋषियज्ञ-पालनमें तत्पर, ब्रह्मतेजोमय, जितेन्द्रिय, सुपवित्र ब्रह्मचर्य्याश्रमनिष्ठ वह मुनि, निखिल शास्त्रज्ञान और लौकिकाचार चातुर्य्य लाभ करके मन ही मन शिवध्यानपूर्व्वक चिन्ता करने लगे,—जो आश्रम पालन करनेसे इह-परकालमें सुखलाभ होता है, चार आश्रमोंके बीच सज्जनोंका अतिमङ्गलकर ऐसा आश्रम कौन है? "यह श्रेयस्कर है, या, यह श्रेयस्कर, वह सुखकर है"—इस प्रकार सब आश्रमोंका विचारकर गार्हस्थ्य ही की उन्होंने प्रशंसा की। ब्रह्मचारी, गृहस्थ वानप्रस्थ और भिक्षुक इन चारों आश्रमोंमें गृहस्थ ही सबका आश्रय है। बिना गृहस्थके इनका अस्तित्व नहीं रहता। गृहस्थ भी सदा देवगण, मनुष्यगण, पितृगण और तिर्य्यक जातिके उपजीव्य है। इसलिये गृहस्थाश्रमावलम्बी ही श्रेष्ठ हैं। जो गृहस्थ स्नान, होम और दान बिना किये

भोजन करते हैं, वह देवता प्रभृतिसे ऋणग्रस्त होकर नरकमें गमन करते हैं। स्नान न करके जो गृहस्थ भोजन करते हैं, वह मलभोजी; वेदपाठ न करके जो भोजन करते हैं, वह कृमिभोजी; और दान न करके जो भोजन करते हैं, वह विष्ठाभोजी होते हैं। कल्पनामें ब्रह्मचर्य्य—परित्याग मात्र है; किन्तु गार्हस्थ्यमें जिस प्रकारका ब्रह्मचर्य्य है, स्वभाववपलचेता ब्रह्मचारीमें भी वह ब्रह्मचर्य्य कहां? जोर करके हो, लोकभयसे हो, वा किसी स्वार्थसिद्धिके उद्देश्यसे हो, ब्रह्मचर्य्य ग्रहण करके, मनमें भी यदि किसी ब्रह्मचर्य्य विरोधी कर्म्मकी चिन्ता करता है, तो इससे उसका ब्रह्मचर्य्य पालन करना न करना समान हो जाता है। परदार वर्ज्जन, स्वदारमें सन्तोष और स्वदारमें भी मात्र ऋतुकालमें गमन, इन कई कारणोंसे गृहस्थ भी ब्रह्मचारी कहलाता है। जिनमें राग-द्वेष नहीं है, काम क्रोध नहीं है, वही सात्त्विक, सभार्य्य गृहस्थ वानप्रस्थकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति आपातवैराग्य गृहत्याग करके हृदयमें गृहधर्म्मकी चिन्ता करता है, वह गृहस्थ है न वानप्रस्थ; वह दोनो आश्रमसे भ्रष्ट है। जो गृहस्थ, अयाचित भावसे उपस्थित वृत्ति द्वारा जीविका निर्व्वाह करते हैं और जो किसी भी उपायसे सन्तुष्ट होते हैं, वह भिक्षुक होकर भी श्रेष्ठ हैं। जो यति, दुर्लभ सुलभ जिस किसी वस्तुकी प्रार्थना करते हैं और आहारमें जिन्हें सन्तोष नहीं, वह यति पतित हैं। उन विश्वानर ब्राह्मणने, आश्रय-चतुष्टयका इस प्रकार गुण दोष विचारकर निज अनुरूपा कुलकन्याके साथ यथाविधि विवाह किया। वह अग्निपरिचर्य्या और पञ्चयज्ञानुष्ठानमें तत्पर हुए। अध्ययन, अध्यापन, दान प्रतिग्रह, यजन, याजन, नित्य इन षट्कर्म्ममें निरत हुए। वह धीरचित्त होकर यथाकाल, परस्परके अविरुद्ध, दम्पतिके अनुकूल धर्म्म अर्थ काम उपार्ज्जन करने लगे। वह कर्म्मकाण्डवेत्ता ब्राह्मण, पूर्व्वाह्नमें देवकर्म्म, मध्याह्नमें मनुष्यकृत्य और अपराह्नमें पितृकृत्य करने लगे। इस प्रकार बहुतसा समय अतीत हुआ; कामपत्नीकीसी सुव्रता शुचिष्मती नाम्नी वह विप्र-पत्नी स्वर्गप्राप्तिके उपाय वंशका अङ्कुर न देख "स्वामी ही मङ्गलकर हैं" ऐसी विवेचना करती हुई, उनसे बोलीं,—हे श्रेष्ठ बुद्धे! प्रियव्रत! प्राणनाथ! आर्य्यपुत्र! आपके श्रीचरण पूजाके फलसे जगतमें मेरा दुर्लभ कुछ नहीं है। स्त्रियोंके लिये जो जो भोग उपयुक्त हैं, आपके प्रसादसे अलङ्कृत होकर वह सब मैंने भोग किया है, प्रसङ्गतः वह भी कहती हूं। उत्तम वस्त्र, उत्तम गृह, उत्तम शय्या, उत्तम दासी, माल्य, ताम्बूल, अन्न और पान—स्वधर्म्मनिष्ठ जनगणका यह अष्टविध भोग्य ही मैंने भोग किया है। नाथ! गृहस्थगणके उप-

युक्त एक प्रार्थना अनेक दिनोंसे मेरे मनमें है; आपको उसे पूर्ण करना पड़ेगा। विश्वानरने कहा—हे पति-हितैषिणि! सुनितम्बिनि! तुम्हें अदेय हमारा क्या है? इसलिये हे महाभागे! प्रार्थना करो; अविलम्ब ही तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण करूंगा! हे कल्याणि! सर्व्वमङ्गलकारी महेश्वरके प्रसादसे इह-परकालमें मेरे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। पतिदेवता विश्वानरपत्नी, पतिका यह वाक्य श्रवणकर हृष्टवदनसे बोलीं,—मैं यदि वरलाभके योग्य हूं और मुझे यदि वरदान करें, तो मैं दूसरे वरकी प्रार्थना नहीं करती, हे निष्पाप शिवभक्त! आप शिवसदृश पुत्र मुझे प्रदान कीजिये। पवित्रव्रत विश्वानर, शुचिष्मतीका यह वाक्य श्रवणपूर्व्वक क्षणकाल हृदयमें समाधि अवलम्बनपूर्व्वक फिर उन्होंने चिन्ता की,—ओह! इस तन्वङ्गीने मनोरथपथसे दूर क्या ही अति दुर्लभ प्रार्थना की है! जो हो! वही विश्वेश्वर ही सर्व्वकर्त्ता हैं। उन शम्भुने ही वाक्स्वरूप इनके मुंहमें अवस्थित होकर यह बात कही है, इसका अन्यथा करनेमें कौन साध्य है? यह होगा ही। इसके उपरान्त एक-पत्नीव्रतावलम्बी विश्वानर मुनिने पत्नी शुचिष्मतीसे कहा,—"कान्ते! ऐसा ही होगा!" पत्नीको इस प्रकार आश्वास देकर मुनि विश्वानर तपस्याके लिये वहां गये, जहां साक्षात् काशीनाथ विश्वेश्वर अवस्थित हैं। इसके उपरान्त शीघ्र ही वाराणसीमें उपस्थित होकर, मणिकर्णिका दर्शन करके उन्होंने शतजन्मार्ज्जित तापत्रयसे मुक्ति लाभ किया। विश्वेश्वर प्रमुख सब लिङ्गोंका दर्शन, सब कुण्ड, सब वापी, सब कूप और सब सरोवर स्नान, सब विनायकोंको नमस्कार, सब गौरीको प्रणाम, पापविनाशी कालराजभैरवकी उत्तम पूजा, दण्डपाणि-प्रमुख गणमण्डलीका यत्नके साथ स्तवपाठ, आदिकेशव प्रभृति सब विष्णुविग्रहका सन्तोष-साधन लोलार्क प्रभृति सूर्य्य प्रतिमासमूहको पुनः पुनः प्रणाम, निरालस्यसे सर्व्वतीर्थमें पिण्ड प्रदान, भोजनादि द्वारा सहस्र यति और सहस्र ब्राह्मणोंका तृप्तिसाधन और महापूजोपचार द्वारा भक्तिके साथ सब शिवलिङ्गकी पूजाकर वारंवार चिन्ता करने लगे कि कौन लिङ्ग शीघ्र सिद्धप्रद है? मेरी इस पुत्रकामनाकी तपस्या किस-लिङ्गमें निश्चलता प्राप्त होगी? अर्थात् किस-लिङ्गके निकट तपस्या करनेसे दूसरे लिङ्गके निकट जाना न पड़ेगा? श्रीमान् ओङ्कारनाथ, कृत्तिवासेश्वर, कालेश्वर, वृद्धकालेश्वर, कलशेश्वर, केदारेश्वर, कामेश्वर, चन्द्रेश्वर, त्रिलोचन, ज्येष्ठेश्वर, जम्बुकेश्वर जैगीषेश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, ईशानेश्वर, द्रुमिचण्डेश्वर, दृक्केश, गरुडेश, गोकर्णेश, ढुंढिगणेश, आशागजगणेश, सिद्धि-गणेश, धर्म्मेश्वर, तारकेश्वर, नन्दिकेश्वर, निवासेश्वर, पत्रीश, पर्व्वतेश्वर,

प्रीतिकेश्वर, पशुपति, ब्रह्मेश्वर, मध्यमेश्वर, वृहस्पतीश्वर विभाण्डकेश्वर, भारतभूतेश्वर महालक्ष्मीश्वर, मरुतेश्वर, मोक्षेश, गङ्गेश, नर्म्मदेश्वर, मार्कण्डेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर, रत्नेश्वर, साधकसिद्धिप्रद, योगिनी-पीठ, यामुनेश, लाङ्गलीश्वर, श्रीमान् प्रभु विश्वेश्वर, अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षी-श्वर, व्याघ्रेश्वर, वराहेश्वर, व्यासेश्वर, वृषध्वज, वरुणेश, विधीश, वशिष्ठेश, शनी श्वर, सोमेश्वर, इन्द्रेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, सङ्गमेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, हरिकेशेश्वर, त्रिसन्ध्येश्वर, महादेव, उपशान्तिशिव, भवा-नीश, कपर्द्दीश, कन्दकेश्वर, अजेश्वर, और मित्रावरुणेश्वर, इन सबमें शीघ्र पुत्रप्राप्त कहां होती है? सुबुद्धि मुनि विश्वानर क्षणकाल ऐसा विचारकर बोले,—ओह् स्मरण हुआ, अबतक विस्मृतियुक्त था; इतने दिनोंमें मनोरथ सफल हुआ! सिद्धगणसेवित सिद्धिकर एक परम लिङ्ग हैं, उनके दर्शन, स्पर्शनसे मन चिरसुख लाभ करता है। देवताओंने उसी लिङ्गको दिवारात्र पूजा करनेके लिये इन्द्रकी अनुमति लेकर सर्व्वदा स्वर्गद्वार उद्घाटन कर रखा है। जहां प्रसिद्ध विकटा देवी सिद्धिरूपसे प्रकट होकर हैं, साक्षात् सिद्धि-गणेश, जिस स्थान-स्थित भक्तगणकी विघ्न-राशि दूरकर उन्हें सर्व्वसिद्धि प्रदान करती हैं, सर्व्वप्राणीका सिद्धिप्रद वह पञ्चमुद्रा-महा-पीठ अविमुक्त महाक्षेत्रोंमें परम सिद्धिक्षेत्र है। महागुह्यतर वीरेश्वर लिङ्ग, वही हैं। काशीके किसी स्थानमें भी एक ति-लशन्तर भूमि भी लिङ्गहीन नहीं है, किन्तु वीरेश्वर तुल्य आशुसिद्धिप्रद, आशु-धर्म्मप्रद, आशुअर्थप्रद, आशुकामप्रद और आशुमोक्षप्रद लिङ्ग दूसरा नहीं है। यह निश्चय है, कि काशीमें जैसा वीरेश्वर लिङ्ग है, वैसा और नहीं है। पूर्व्वकालमें पञ्चस्वर गन्धर्व्व, खक्कविद्या नामे विद्याधर और वसुपूर्ण नामे पक्षराजने इन्हीं शिव-सकाशहीसे परम सिद्धि लाभ की थी। पूर्व्व-कालमें इसी स्थानमें कोकिलालापी नाम्नी श्रेष्ठ अप्सरा भक्तिभावसे नाचती नाचती सशरीर इसी लिङ्गमें लीन हो गई थी। पूर्व्वकालमें वेदशिरा नामक ऋषि, शतरु-द्रिय मन्त्र जप करते करते इसी ज्योतिर्म्मय लिङ्गमें सशरीर प्रविष्ट हो गये थे। चन्द्र-मौलि और भरद्वाज नामे दो परम शैव, वीरेश्वर पूजा करके गान करते करते इसी लिङ्गमें लीन हो गये हैं। नागश्रेष्ठ शङ्खचूड़ने, रातको स्वीय फणा स्थित मणिकिरण द्वारा इस लिंङ्गको बहुवार नीराजना करके छः महीनोंके भीतर ही सिद्धिलाभ किया था। इसी स्थानमें हंसपदी माम्नी किन्नरीने स्वामी वेणुप्रियेके साथ सुस्वरसे गान करके परम-निर्व्वाण लाभ किया था। इसीलिये जगतमें वीरेश्वर लिङ्ग परम सिद्ध लिङ्ग कहा जाता है। विदेहवंशीय जयद्रथने,

राज्यभ्रष्ट होकर, वीरेश्वर शिवलिङ्गकी आराधना की, इसीके फलसे उन्होंने रिपुकुल निर्मूल करके निष्कण्टक राज्य लाभ किया। मगधादि पति जितेन्द्रिय विदूरथ राजा अपुत्रक थे, इसके उपरान्त वीरेश्वर-प्रसादसे वह पुत्रवान् हुए। वसुदत्त और रत्नदत्त नामे वणिक्ने एक वर्षतक इस स्थानमें वीरेश्वर लिङ्ग पूजा करके उसके प्रभावसे, वायुतनया तुल्य कन्यारत्न लाभ किया था। मैं भी इस जगह त्रिकाल, वीरेश्वर लिङ्ग पूजा करके शीघ्र ही पत्नीके अभिलाषानुरूप पुत्र लाभ करूंगा। धैर्य्यशाली कृती व्रतनिष्ठ ब्राह्मण विश्वानरने इस प्रकार कृतनिश्चय होकर चन्द्रकूप जलमें स्नान करके आराधनाका नियम ग्रहण किया। वह एक मासतक एकाहारी रहे, एक मास नक्ताहारी रहे, एक मास अयाचित-भोजी रहे और एक मास उपवासी रहे। एक मास, मात्र दुग्ध पान करके जीवन रक्षा करते रहे, एक मास शाकभोजी और फलभोजी होकर रहे, उन्होंने एक मुष्टि तिल भोजनसे एक मास बिताया, और एक मास केवल जल पान करते रहे। इसके उपरान्त उन्होंने एक मास पञ्चगव्याहारसे, एक मास चान्द्रायण-व्रतसे, एक मास कुशाग्रस्थित जलविन्दुमात्र पान द्वारा और अन्तिम एक मास वायुभोजी होकर काट दिये। इसके उपरान्त द्विज विश्वानर, तेरहवें महीनेके पहले दिन, प्रत्यूषमें गङ्गाजलमें स्नान करके जैसे ही आये, वैसे ही उन तपोधन ब्राह्मणने लिङ्गमें देखा,—विभूतिभूषित आकर्ण विस्तृत नयन, सुरक्त-उष्ठाधर, रुचिर-पिङ्गल-जटामण्डित-मस्तक, हास्यमुख, दिगम्बर, शैशवोचित वेश-भूषा-सम्पन्न अष्टवर्षाकृति एक मनोहर बालक हैं। वह बालक श्रुतिसूक्तावली पाठ करते हैं और अपनी लीलासे हंसते हैं। विश्वानर उन्हें देखते ही आनन्दसे रोमाञ्चित-कलेवर हो, गद्गद-स्वरसे पुनः पुनः 'मनोहरस्तु' उच्चारण करते हुए स्तव करने लगे;—सत्य सत्य एक अद्वितीय ब्रह्म ही सब है; जगतमें नाना कुछ नहीं है। श्रुतिमें है,—एक रुद्र ही हैं, दूसरे नहीं; इसलिये आप ही एक अद्वितीय महेश्वर ब्रह्म हैं, आपकी भजना करता हूं। हे शम्भो! एक आप ही निखिल जगतके कर्त्ता हैं; सूर्य्य जैसे एक होनेपर भी नानाजलमें प्रतिविम्बित होनेपर अनेक जान पड़ते हैं, उसी तरह आप निराकार एकस्वरूप होकर भी नानाविध वस्तुमें नानारूपसे प्रतिभात होते हैं। इसलिये हे ईश! आपके सिवा और किसीकी भजना नहीं करता! जैसे रज्जु, शुक्ति और मरीचिकाको जाननेसे रज्जुसे सर्पभ्रम, शुक्तिसे रजतभ्रम और मरीचिकासे जलराशिभ्रम अपगत होता है, इसी तरह जिनके जान लेनेसे यह ब्रह्माण्डव्यापी जगतप्रसङ्गभ्रम अपनीत होता

है, मैं उन्हीं महेशकी भजना करता हूं। हे शम्भो! आप जलजमें शैत्य, अनलमें दाहिकाशक्ति, सूर्य्यमें उत्ताप; आप चन्द्रमें प्रसन्नता, पुष्पमें गन्ध और दुग्धमें घृत हैं; इसीलिये आपकी भजना करता हूं। आप श्रोत्रहीन हैं, तथापि शब्द ग्रहण करते हैं; आपके घ्राणेन्द्रिय नहीं है, तथापि आप घ्राण लिया करते हैं; आप पादहीन हैं, तथापि आप दूरसे आते हैं; आपके चक्षु नहीं है, किन्तु आप दर्शन करते हैं; आपके जिह्वा नहीं है तथापि आप रसज्ञ हैं; इसलिये आपको सम्पूर्ण रूपसे कौन जान सकता है?—मैं आपकी भजना करता हूं। हे ईश! वेद आपसे साक्षात् साक्षात् सम्बन्धमें अवगत नहीं हैं; विष्णु, अखिलविधाता ब्रह्मा, योगीन्द्रगण और इन्द्रप्रमुख देवगण भी आपको साक्षात् सम्बन्धमें नहीं जानते,—केवल भक्त ही आपको जानते हैं; इसलिये आपकी भजना करता हूं। हे ईश! आपका गोत्र नहीं है, जन्म नहीं है, नाम नहीं है, रूप नहीं है, शील नहीं है, देश भी नहीं है; आप ऐसे होनेपर भी त्रिलोकके ईश्वर और लोगोंकी सर्व्वविध कामना पूर्ण करते हैं, इसलिये आपकी भजना करता हूं। हे स्मरारे! आप हीसे सब उत्पन्न और आप ही सब हैं,—आप गौरीश, आप नग्न और आप अतीव शान्त हैं; आप वृद्ध, आप युवा और आप ही बालक हैं,—अधिक और क्या कहें, जो आप नहीं हैं, ऐसा और क्या है;—इसलिये आपको नमस्कार करता हूं। जब विप्र विश्वानर, अति हर्षके साथ इस तरह स्तव करके भूतलपर दण्डवत् प्रणिपात हुए, तब निखिल वृद्धोंके वृद्ध उन बालकने कहा,—हे ब्राह्मण! वर प्रार्थना करो। इसके उपरान्त विश्वानर मुनिने, हृष्टान्तःकरणसे उठकर प्रत्युत्तर प्रदान किया,—प्रभो! आप सर्व्वज्ञ हैं, आपसे अविदित और क्या है? भगवन्! आप सर्व्वान्तर्य्यामी सर्व्व-स्वरूपी और सर्व्वाभीष्टप्रदाता हैं। आप ईश्वर हैं, दैन्यकारिणी याचणामें मुझे क्यों नियुक्त करते हैं? शिशुरूपी देवदेवने, पवित्र शुद्धव्रत विश्वानरके यह वाक्य श्रवण-पूर्व्वक सुपवित्र ईषत् हास्य करके अविलम्ब ही प्रत्युत्तर दिया,—हे पवित्र! तुमने शुचिष्मती विषयमें जो अभिलाष मन ही मन किया है, वह अचिरकालमें निश्चय ही पूर्ण होगा। हे महामते! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे—तुम्हारे सर्व्वदेवप्रिय पवित्र पुत्र-रूपसे उत्पन्न होऊंगा। मेरा नाम होगा, गृहपति। तुम्हारा कथित यह पवित्र अभिलाषाष्ट स्तोत्र शिवके समीप एक वर्षतक त्रिकालमें पाठ करनेसे कामना पूर्ण होती है। इस स्तोत्रपाठसे पुत्र-पौत्र होते हैं, धन होता है, सर्व्वविषयमें शान्ति होती है, सब आपद विनष्ट होते हैं और स्वर्ग और मुक्ति भी सम्पन्न होती है, इस

विषयमें संशय नहीं। जो अपुत्रक व्यक्ति, एक वर्षतक प्रातःकाल उठकर उत्तमरूपसे स्नान करके शिवलिङ्गपूजन पुरःसर यह स्तोत्र पाठ करते हैं, उन्हें सब फललाभ होता है। मैं अव्यय होनेपर भी इसी कार्त्तिकमासके प्रसादसे तुम्हारा पुत्रत्व प्राप्त करूंगा; और जो व्यक्ति यह स्तोत्र पाठ करेंगे मैं उनका भी पुत्र होऊंगा। यह अभिलाषाष्टक ऐसे वैसे व्यक्तिको न देना; प्रयत्नके साथ इसे गोपन रखना, इस स्तवपाठके प्रभावसे महावन्ध्याके भी सन्तान होता है। स्त्री अथवा पुरुषके, एक वर्षतक नियमपूर्वक लिङ्गके समीप यह स्तोत्र पाठ करनेसे उन्हें निश्चय ही पुत्र होगा। यह कहकर लिङ्गसे आविर्भूत बालक, अन्तर्हित हुए; विप्र विश्वानर भी घर गये।

दशम अध्याय समाप्त॥ १०॥

एकादश अध्याय।

अग्निकी उत्पत्ति।

अगस्त्यने कहा,—हे सुभगे! सुनितम्बिनि! पुण्यशील और सुशीलने विश्वानरकी उत्पत्ति कथा जिस तरह कही थी, उसे श्रवण करो। इसके उपरान्त यथाकाल यथाविधि गर्भाधान-कर्म्म विहित होनेपर विश्वानरपत्नी गर्भवती हुई। इसके उपरान्त पण्डित विश्वानरने गर्भस्पन्दनसे पहले अर्थात् तृतीय महीनेमें पुंस्त्ववित्वृद्धिके लिये गृह्योक्त विधिके अनुसार उत्तमरूपसे पुंसवन कार्य्य किया। उन क्रियाभिज्ञ विश्वानरने, सुखसे प्रसव होनेके विचारसे गर्भका रूप-समृद्धि-सम्पादक सीमन्तोन्नयन-कार्य्य अष्टम महीनेमें किया। इसके उपरान्त, उत्तम नक्षत्र, केन्द्रस्थ वृहस्पति शुभग्रह सब पञ्चम नवमादि अयुग्मस्थानस्थित और शुभलग्नमें; विश्वानर-पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे सर्व्वामंगलविनाशन इन्दुसुन्दरवदन एक पुत्र भूमिष्ट हुआ; उत्पत्तिमात्रसे उनकी प्रभासे सूतिकागृह उज्ज्वल हुआ। उसी समय भूर्भुवः स्वर्लोक निवासी प्राणिगणकी सम्पूर्ण सुखराशि उत्थित हुई। दिग्वधू-मुख सौरभसम्पादक, गन्धवह-वाहन जलदजालने, कमनीय गन्ध कुसुमराशि वर्षण की। देवदुन्दुभि ध्वनित हुई, दिक् सकल सर्व्वतोभावसे प्रसन्न हुई। चतुर्द्दिकस्थ नदी समुदय, प्राणिगणके हृदयके साथ निर्म्मल हुई। तमोगुण, अज्ञान और अन्धकार विनष्ट हुआ, रजोगुण और धूलिराशि विलीन हुई, प्राणिगण सत्त्वगुण और वीर्य्ययुक्त हुए; तब पृथिवी बड़ी ही मङ्गलमयी हुई। प्राणिगणकी प्रीतिविधायिनी कल्याणी वाणी सर्व्वत्र उच्चारित हुई। तिलोत्तमा, उर्व्वशी, रम्भा, प्रभा, विद्युत्प्रभा, शुभा, सुमङ्गला, शुभालापा, और सुशीला प्रभृति वाराङ्गनागण देवदुल्य

मान-मुक्ताफल-शोभित, कर्पूरागुरु-मृगनाभि कक्कोलकर्द्दमपूर्ण, प्रवाल-हीरक-दीपावली-समन्वित, हरिद्रानुलिप्त, मरकत-मणि-राग-रञ्जित, दधिकुङ्कुमरुचिरमाल्यभूषित, पद्मरागप्रवाल गोमेद पुष्पराग और इन्द्रनील प्रभृति रत्नराजिद्वारा उद्भासित-क्वणत्-कङ्कण-विलग्न पात्र सब हर्षके साथ हाथमें ले वहां आईं। सहस्र सहस्र विद्याधरी किन्नरी और अमराङ्गनागण चामर परिचालन करती करती माङ्गलिक द्रव्य हाथमें लिये वहां आईं। सुस्वर-शालिनी गन्धर्व्वकन्या, नागकन्या और वहां यक्षकन्या, सुललित गान करती हुईं, दलकी दल आ उपस्थित हुईं। मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, कश्यप, मैं (अगस्त्य), विभाण्डक, पाण्डव्य, लोमश, लोमपाद, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातुकर्ण, पराशर, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शता-तप, लिखित, शङ्ख, शिलाद, उञ्छभुक्, जमदग्नि, सम्वर्त्त, मतङ्ग, भरत, अंशुमन्, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ऋष्यशृङ्ग, दुर्व्वासा, रुचि, नारद, तुम्बुरु, उतङ्क, वामदेव, च्यवन, असित, देवल, शालङ्कायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, सपुत्र मृकण्डु, दाल्भ्य, उद्दालक, धौम्य, उपमन्यु, और वत्स प्रभृति मुनिगण भी मुनिकन्यागण, विश्वानर-तनयकी शान्तिके लिये, धन्य विश्वानराश्रममें उपस्थित हुए। वृहस्पति सहित ब्रह्मा, देवश्रेष्ठ गरुड़ध्वज, नन्दि-भृङ्गिके साथ गौरी सहित वृषध्वज, इन्द्रप्रमुख देवगण, पातालनिवासी नागगण और नदी समभिव्याहारी महासमुद्रगण बहुतर रत्न ग्रहण करके और सहस्र सहस्र स्थावर-पर्व्वतादि जङ्गमरूप धारण करके उस महामहोत्सवमें आ उपस्थित हुए; उस समय वहां मानो अकाल-कौमुदी हुई। स्वयं देवप्रवर पितामहने, विश्वा-नर-तनयका जातकर्म्म किया। इसके उपरान्त नामकरण-प्रतिपादिका श्रुति विचारकर "इस बालकका नाम गृहपति" एकादश दिनका कर्त्तव्य यह नामकरण-कार्य्य यथाविधानसे उनका नाम निष्पादक वेद उच्चारण करते हुए समर्थन किया। वह वेदमन्त्र,—"अयमग्निः गृहपतिः" इत्यादि और "अग्नेः गृहपतेः" इत्यादि; अपर शाखोक्त वेदमन्त्र भी उच्चारण किया। सर्व्वप्रपितामह ब्रह्मा, चतुर्व्वेद-मन्त्रोक्त आशीर्व्वाद द्वारा अभिनन्दन करके और बालकोंके लिये जो कुछ करना होता है, वह रक्षाकार्य्य सम्पादन करके हंसारोहणसे, हरिहरके साथ वहांसे नि-ष्क्रान्त हुए। "बालकका कैसा रूप है! कैसा तेज है! कैसे सर्व्वाङ्गके लक्षण हैं! ओह! शुचिष्मतीका क्या ही भाग्य है! स्वयं महादेव आविर्भूत हुए थे। अथवा शिवभक्तोंके सामने स्वयं शिव जो आविर्भूत होंगे, तो उसमें विचित्रता क्या है?

कारण, शिवभक्त भी शिव हैं।" रोमाञ्चित-कलेवरसे परस्पर इसी प्रकार स्तव करते हुए विश्वानरसे विदासम्भाषण करके सब यथास्थान गये। यह चिरन्तन श्रुति है,—'पुत्रद्वारा ही सब लोक जय होता है।' अपुत्र व्यक्तिका गृह शून्य है, उसका उपार्ज्जन विफल होता है; इसीलिये गृहस्थ पुत्रकामना करते हैं। अपुत्रक व्यक्तिकी अपेक्षा अपवित्र और कुछ नहीं है। पुत्रलाभकी अपेक्षा परम-सुखकर वस्तु और कुछ नहीं है; और इहलोक और परलोक; कोई भी पुत्रकी अपेक्षा परम मित्र नहीं है। औरस, क्षेत्रज, क्रीत, दत्तक, स्वयंप्राप्त, पुत्रिका-पुत्र और विपद्में रक्षित,—यह सप्तविध पुत्र कीर्त्तित हुए हैं। पण्डित गृहस्थ, सप्तविध पुत्रोंमें एकतम पुत्र रखेंगे। जिसका नाम जितना पहले परिगृहीत हुआ है, वह पुत्र उतना ही श्रेष्ठ और उसके बाद परिगृहीत पुत्र क्रम क्रमसे निकृष्ट हैं। विष्णु पारिषद्द्वयने कहा,—पिता विश्वानरने चौथे महीने इस बालकका 'निष्क्रमण' कर्म्म किया; छठें महीने अन्नप्राशन किया; प्रथम वर्ष यथाविधि चूड़ाकरण किया। इसके उपरान्त कर्म्मवेत्ता कृती पिताने 'कर्णवेध' कार्य्य समाप्त करके, ब्रह्मतेज वृद्धिके लिये पञ्चमवर्षमें श्रवणानक्षत्रमें 'उपनयन' किया। इसके उपरान्त सुबुद्धि विश्वानरने, 'उपाकर्म्म' कार्य्यके बाद पुत्रको वेद पढ़ाया। विश्वानरपुत्रने,—अङ्ग, पद और क्रमके साथ सब वेद तीन वर्षमें यथाविधि अध्ययन किये। शक्तिशाली गृहपतिने, विनयादि गुणावली प्रकाश करते हुए निमित्त मात्र गुरुके मुखसे सब विद्या ग्रहण कीं। तत्त्वज्ञानी कामचारी देवर्षि नारदने, विश्वानरतनय गृहपतिको नवम वर्ष वयसमें मातापितृ-शुश्रुषामें रत देख विश्वानर आश्रममें आगमनपूर्व्वक वहां विश्वानर-दत्त अर्घ्य और आसन क्रमसे ग्रहण करके विश्वानरकी कुशल पूछी। इसके उपरान्त उन्होंने कहा,—हे महाभाग विश्वानर! हे शुभव्रते शुचिष्मति! यह शिशु गृहपति हैं, तुम्हारा वाक्य पालन करते हैं, अति उत्तम हैं। मातापिताके वाक्य पालनके सिवा पुत्रका और दूसरा तीर्थ नहीं है, गुरु नहीं है, सत्कर्म्म नहीं है और अन्य धर्म्म भी नहीं है। त्रैलोक्यमें मातापिताकी अपेक्षा अधिक पुत्रके लिये और कुछ नहीं है, गर्भमें धारण और पोषण प्रयुक्त माता, पिताकी अपेक्षा भी गरीयसी हैं। गङ्गाके पवित्र जलमें स्नान करनेसे जो पवित्रता होती है, जननी पादोदक द्वारा निजदेह अभिषिक्त करनेसे उसकी अपेक्षा अधिक पवित्रता होती है। निखिलकर्म्मसन्न्यासी परिव्राजकके भी पिता वन्दनीय हैं; जो सर्व्ववन्द्य यति हैं, वह भी यत्नके साथ मातृवन्दना करें। माता पिताका परितोष साधन हो। अत्यम

तपस्या है, वही परम व्रत और वही परम धर्म्म है। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं, कि सुखाकार द्वारा ही विनीतके नामसे प्रतीयमान यह शिशु ग्रहपति तुम लोगोंका जैसा सम्मान करते हैं, कोई अपकृष्ट बालक माता पिताका उतना सम्मान कभी नहीं करता। हे वैश्वानर! इधर तो आओ! मेरी गोदमें तो बैठो। मैं लक्षण परीक्षा करूंगा, दाहना हाथ तो दिखाओ। नारद मुनिकी बालककी यह बात कहनेपर, श्रीमान् बालक माता पिताकी आज्ञा पाकर नारदको प्रणाम करके भक्तिविनम्रभावसे नारदकी गोदमें बैठे। इसके उपरान्त नारदने उनका सर्व्वाङ्ग, जिह्वा और दशनावली देखी। फिर कुङ्कुमरञ्जित त्रिगुणीकृत सूत्र लाकर शिव-शिवा-गणेशका स्मरण करके मुनिने,—उदङ्मुख खड़े बालकका आपाद-मस्तक उस सूत्र द्वारा नापा। इसके उपरान्त उन्होंने कहा,—अष्टोत्तर शताङ्गुलि परिमाणसे जिसका दैर्घ्यमें प्रस्थमें समान होता है, वह लोकपाल होता है; हे द्विज! तुम्हारे बालकका परिमाण उसी प्रकार है। जिस पुरुषका पञ्चस्थान सूक्ष्म, पञ्चस्थान दीर्घ, छः स्थान उन्नत तीन स्थान विस्तीर्ण, तीन स्थान ह्रस्व और तीन वस्तु गम्भीर है, वह द्वात्रिंशत् लक्षणाक्रान्त कहलाते हैं। तुम्हारे इस दीर्घायु पुत्रके (१) बाहुद्वय (२) नेत्रद्वय (३) हनु (४) जानु और (५) नासा, यह पञ्च स्थान जैसे दीर्घ हैं, ऐसा दीर्घ होना ही प्रशस्त है। इसकी ग्रीवा जङ्घा और लिङ्ग ह्रस्व होनेकी वजहसे यह स्तुतिका पात्र है। स्वर, अन्तःकरण और नाभि इसकी गम्भीर है, इसलिये यह शिशु बड़ा ही सुलक्षण है। त्वक्, केश, उँङ्गली, दन्त और अङ्गुलिपर्व्वसमूह जैसे सूक्ष्म होनेसे दिकपाल पद-प्राप्ति होती है, इस बालकमें वैसे ही हैं। वक्ष, उदर, ललाट स्कन्ध हाथ और मुख, इन छः स्थानोंके जैसे उन्नत होनेसे, महत् ऐश्वर्य्य-प्राप्ति होती है, इस बालकके वैसे ही उन्नत दिखाई देते हैं। (१) करतलद्वय (२) नयनद्वयप्रान्त, (३) तालू, (४) जिह्वा, (५) अधर (६) उष्ठ और (७) नखश्रेणी यह सप्तस्थान रक्तवर्ण होनेसे राज्यसुख लाभ होता है। इस शिशुका ललाट, कटि और वक्षस्थल जैसा विस्तीर्ण है, उससे इसे निश्चय ही सर्व्वतेजोतीत ऐश्वर्य्य प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं होगा। इस शिशुके करद्वय कठोरताजनक कर्म्म न करनेपर भी कमठीपृष्ठवत् कठिन और पदतलद्वय पथिभ्रमणसे भी कोमल हैं; यह होना राज्यप्राप्तिके लक्षण हैं। जैसी रेखा रहनेसे लोग दीर्घायु होते हैं, इस बालककी भी—तर्ज्जनी मूल-पर्य्यन्त-व्यापिनी, कनिष्ठाङ्गुलिके पश्चाद्भाग पर्य्यन्त समागत—ठीक वैसी ही रेखा दिखाई देती है। इस बालकके

मांसल, रक्ततल, सरल, नातिस्थूल, समगुल्फ, स्वेदहीन, स्निग्ध, सुशोभन पदद्वय ऐश्वर्य्यके सूचक हैं। तुम्हारा यह बालक आरक्तस्वल्प-कररेखा-सम्पन्न होनेके कारण सदा सुखी रहेगा और कृश ह्रस्व-लिङ्ग होनेके कारण राजराज होगा। इसके गुल्फ और कटि उच्चासनके योग्य और इसकी नाभि वर्त्तुल, दक्षिणावर्त्त और रक्तवर्ण, यह महैश्वर्य्यसूचक है। यदि इसे दक्षिणावर्त्तिनी एकधाराकी पेशाब होती है, और इसके वीर्य्यसे मत्स्य और मधुका गन्ध आवे, तो यह राजा होगा। इस शिशुके विस्तीर्ण, मांसल, स्निग्धस्फिक्‌द्वय बाहुयुगल दिक्‌पाल-पदके सूचक हैं। जिस प्रकारकी रेखायें हाथमें रहनेसे देवलोकमें राजा होते हैं, इस बालकके करतलमें वैसी ही रेखायें हैं;—इस बालकके करतलमें श्रीवत्सचिह्न, वज्रचिह्न, चक्रचिह्न, पद्मचिह्न, मत्स्यचिह्न और धनुश्चिह्न हैं। इसके द्वात्रिंशत् दन्त, ग्रीवा हस्तिशुण्डवत् सवलित और कम्बुवत् त्रिरेखाङ्कित; स्वर क्रौञ्च, दुन्दुभि, हंस और मेघके शब्दसदृश है; इससे निश्चय होता है,—कि सब राजाकी अपेक्षा इस बालकका आधिक्य होगा। इसके नयन मधुकी तरह पिङ्गलवर्ण हैं; लक्ष्मी इसे कभी परित्याग न करेंगी। पञ्चरेखायुक्त ललाट और सिंहोदर सदृश उदर बालकके बड़े ही सुलक्षण हैं। इसके पदतलमें ऊर्द्धरेखा, निश्वासमें पद्मगन्ध, अङ्गुलियां परस्पर संहत किये हुईं, हस्त प्रसारण करनेसे करतलमें किसी स्थलमें छिद्र रंच नहीं जाता और नखश्रेणी उत्तम, लड़का अत्यन्त सुलक्षणाक्रान्ता है, किन्तु पूर्ण निर्म्मल कलानिधि चन्द्रकी तरह सर्व्वगुणान्वित सर्व्व सुलक्षणाक्रान्त इस बालकको कदाचित विधाता निपातित करेंगे। इसलिये सर्व्वप्रकारका यत्न करके इस बालककी रक्षा करना; विधाताके वक्र होनेसे गुण भी दोषका काम करता है। द्वादश वर्षमें इस शिशुके वैद्युत अनलसे विघ्न होनेकी आशङ्का है। श्रीमान् नारदने यह बात कहकर यथास्थान प्रस्थान किया। सभार्य्य विश्वानरने नारदकी यह बात सुन मनमें समझ लिया, कि उसी समय दारुण वज्रपात हुआ। विश्वानरने 'हा हतोस्मि' कहकर वक्षःस्थलपर कराघात किया और भावी पुत्रशोकसे आकुल हो अत्यन्त मूर्च्छापन्न हुए। शुचिष्मती भी अतिशय व्याकुलेन्द्रिया और दुःखार्त्ता होकर आर्त्तस्वरसे हाहाकार करती हुईं अतिदुःसह रोदन करने लगीं,—'हा शिशो। हा गुणनिधे! हा पितृवचन-पालनपरायण! हाय! इस अभागिनीके पेटमें तुम क्यों आये? हा पुत्र! तुम्हीं मेरे एकमात्र पुत्र हो; तुम्हारी गुणावली-स्मरणरूप वीचिमालासङ्कुल शोकसागरमें निपतिता होनेसे, उस भयसे तुम्हारे सिवा कौन मेरी रक्षा

करेगा। हा शिशो! हा सुपवित्र! हा कमलायताच! हा लोक-लोचन-चकोर-सुधाकर! हा पितृनयन-कमल-दिवाकर! हाय! तुम तो मेरे सहस्र उत्सवोंके सहस्र सुखोंके एकमात्र हेतु हो। हाय! पूर्णचन्द्रवदन! हाय! तेरा तो बेटा! उङ्गलीका नख पर्य्यन्त सुन्दर है। तू तो बेटा! मिष्टवचन-सुधाका सागर है! हाय! कितने दुःखोंसे हमने तुझे पाया है! बेटा गृहपति! तुम्हारे पानेके लिये मैंने क्या क्या नहीं किया? हाय बेटा! तेरे लिये मैंने किस देवताकी पूजा नहीं की,—किस तीर्थमें वास नहीं किया? अरे पुण्यमात्र-लभ्य! मैंने तेरे लिये किस नियम, औषध, मन्त्र और यन्त्रकी साधना नहीं की? अरे संसार-सागरकी तरणि! दुःखभार हरण कर! अरे सुखसागर! मुखचन्द्र प्रदर्शन कर! बेटा! तू हमारी पुन्नाम-नरक-समुद्र-शोषणकारी वाड़वाग्नि है; स्वीय वचनामृत सेचनसे पिताको जीवन प्रदान कर। हाय! यह भावी अमङ्गल जानकर भी क्यों देवगण तेरे जन्ममहो-त्सवमें युगपत् मिलित हुए? हाय! वह क्यों एक स्थानमें सब गुण, शील, कलाकलाप सौन्दर्य्य और सुलचण अवलोकन करके पूर्ण आनन्दित हुए? हे शम्भो! हे महेश! हे शूलपाणि! वेदवेत्ता कहते हैं,—आप मृत्युञ्जय हैं; आपके दिये शिशुतनयपर यदि यमका आघात हो, तो कहिये जगतमें किसको निपात न होगा? हाय! हाय! हा विधातः! आपने बहुत प्रयत्नसे उस संसार-तापहारी बालककी अगाधमें उत्तम रत्न-सार प्रबल विशाल गुण-सागर और मेरा समीपवर्त्ती करके क्यों निर्माण किया? कारण, शीघ्र ही तो आप उसे अपहरण करेंगे। हे काल! तुम्हारी रानी क्या पुत्रवती नहीं हैं? अथवा वह पुत्रवती होकर भी पुत्रके मुखचन्द्रसे तुम्हारी कालता (अन्धकार अथच नाशकत्व) दूर नहीं कर सकीं। नहीं तो हे वज्रनि-ष्ठुर! मृणालसदृश अति कोमलाङ्ग बालक-पर कठोर कुठारसम दंष्ट्राघात कैसे कोई करेगा? शुचिष्मतीने बहुत बार ऐसा ही विलाप किया। उनके नयन-जलधारासे शत शत नदी उत्पन्न होकर उसमें कदाचित् तरङ्ग खेलने लगीं। पुत्र शोकानल-सन्तप्ता विश्वानर-पत्नी, भीतर भीतर उष्ण और दीर्घ निश्वास परित्याग करती हुई शुष्क होने लगीं। उनका वह करुणविलाप सुनकर कदाचित् तरु-लतागण भी पवन-कम्पनच्छलसे वारंवार शिखर सञ्चालन करके कुसुमाश्रु वर्षण करते हुए विहग कूजन स्वरूप आर्त्तस्वरसे रोदन करने लगी। शुचिष्मतीने इतने अधिक मुक्त कण्ठसे आर्त्त-स्वरसे रोदन किया था, कि गिरिकन्दरमुखो सर्व्वदिङ्मण्डली भी पशु-पचिसञ्चार-शून्य होकर उच्च प्रतिध्वनिच्छलसे मानो रोदन करती जान पड़ी। यह आर्त्तनाद श्रवण

करके विश्वानर भी मोहयुक्त होकर,—"यह क्या है,—क्या, क्या, यह क्या! हमारे वाह्यप्राण, अन्तरात्माश्रय, सकलेन्द्रियके परिचालक गृहपति कहां हैं" कहते कहते उठे। अगस्त्यने कहा,—इसके उपरान्त गृहपतिने माता पिताको बहुत शोकाकुल देख ईषत् हास्यके साथ कहा मा! इतना भय आपको कहांसे हुआ! आपके चरणरेणुरूप कवच द्वारा मेरी आवृत देहको स्वयं काल भी विनष्ट नहीं कर सकता; अति क्षुद्र नगण्य विद्युत् तो और ही बात है। हे माता पिता! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये,—यदि मैं आपका सन्तान होऊंगा, तो मैं सर्व्वज्ञ, साधुगणके सर्व्वाभीष्टप्रद, कालकूट विषपायी कालकाल महाकाल मृत्युञ्जयकी आराधनासे ऐसा कर्म्म करूंगा, कि जिससे विद्युतको भी मुझसे भयभीत होना पड़ेगा। वृद्ध ब्राह्मण-दम्पति अकालमें सुधावृष्टिके तुल्य पुत्रका यह वाक्य श्रवणकर शान्तताप होकर बोले,—इस बिना मेघकी वृष्टिने, बिना क्षीर समुद्रकी अमृतोत्पत्तिने और बिना चन्द्रकी कौमुदीकान्तिने कहांसे आ मेरा अतीव सुख सम्पादन किया! क्या कहा! क्या कहा! फिर कहो, फिर कहो;—क्या?—काल भी विनाश कर न सकेंगे, अति क्षुद्रा नगण्य विद्युतकी तो और ही बात है? तुम्हारे कीर्त्तित देवदेव मृत्युञ्जयकी आराधना ही मेरी शोकशान्तिका महान् उपाय है। बेटा! पूर्व्वकालमें कालपाशबद्ध श्वेतकेतुकी त्रिपुरारिने जिस तरह रक्षा की थी, क्या तुमने वह नहीं सुना? अष्टम वर्षीय बालक शिलादपुत्र मृत्युमुखमें निपतित होते थे, शिवने उनकी रक्षाकर जगदानन्दकर 'नन्दी' नामसे अपना पारिषद बनाया है। क्षीरोद-मथन-सम्भूत, प्रलयानल सदृश घोर हलाहल पान करके उन्होंने त्रिभुवनकी रक्षा की है। त्रिलोकसम्पत्तिहर्त्ता महादर्पान्वित जलन्धर असुरको जिन्होंने पदाङ्गुष्ठ-रेखोत्पन्न चक्रद्वारा विनष्ट किया है; जिन धूर्ज्जटने विष्णुको वाण करके विष्णुरूपी-एक शरपात-सम्भूत अनलराशि द्वारा त्रिपुरको सर्व्वतोभावसे दग्ध किया है, त्रैलोक्यके आधिपत्य लाभके लिये मदमूढ़ अन्धकासुरको जिन्होंने शूलाग्रसे प्रोथित करके अयुत वत्सर सूर्य्यतापमें विशुष्क किया है, जिन्होंने त्रैलोक्यविजय-गर्व्वित कामको ब्रह्मादि देवगणके सामने ही दृष्टिपात मात्रसे अनङ्ग किया है,—पुत्र! ब्रह्मादिके भी एक मात्र कर्त्ता विश्वरक्षण-महामणि उन्हीं मेघवाहन अच्युत शिवके शरणापन्न हो। गृहपति माता पिताकी ऐसी अनुमति पानेके उपरान्त उनके चरणयुगलमें प्रणाम और उन्हें प्रदक्षिणा करके और अनेक आश्वास देकर बाहर निकले। कल्पान्त-सम्भूत सन्तापसे विश्वेश्वर जिनकी रक्षा करते हैं, विचित्र-गुणशालिनी हिमहारशुभ्रा जाह्नवी हार-

लताकी तरह जिनकी कण्ठभूमिमें अवस्थित होकर शोभा सम्पादन करती हैं; जो संसारताप-तप्त जनगणको पुनर्जन्म वरणाके साहाय्यसे वारण करती हैं और असीधाराके साहाय्यसे छेदन करती हैं; जिनके सुदृढ़ अष्टाङ्ग योगलभ्य निर्व्वाणमुक्ति सबके सामने प्रकाश करनेके कारण पण्डितोंने जिनका नाम काशी रखा है,—उन्हीं ब्रह्म-नारायणादि दुर्लभा काशीमें उपस्थित होकर गृहपति संसारताप-तप्त आकर्ण-विस्तृत नयनयुगलसे दर्शन करते करते पहले मणिकर्णिकामें पहुंचे। उन्होंने वहां यथाविधि स्नान करके त्रैलोक्यप्राणि-सन्त्राण-कारी त्रिभुविश्वेश्वरकी अवलोकन करके प्रणाम किया। गृहपतिने वह लिङ्ग देख देखकर हृदयमें परम परितोष लाभ किया। उन्होंने सोचा, कि यह निश्चय ही सुव्यक्त परमानन्दमूल है। स-चराचर त्रिभुवनमें मेरी अपेक्षा धन्य और कोई नहीं है; कारण, मैंने आज प्रभु विश्वेश्वरका दर्शन पाया। मैं समझता हूं, त्रैलोक्यका सारसर्व्वस्व इसी पिण्डमें विराजमान है। अथवा क्षीर समुद्रमें उत्थित अमृतपिण्ड कदाचित यही है। अथवा यह आत्मज्ञान तेजका प्रथम अङ्कुर; किंवा ब्रह्मानन्दको उत्तम मूल हैं। योगि-जनके हृदयपद्मस्थित जो आनन्दमय ब्रह्म निराकार कहलाते हैं, वही क्या लिङ्गच्छलसे साकारत्व प्राप्त हुए हैं? अथवा यह क्या ब्रह्मास्त्रके आधार हैं, नाना रत्न-पूर्ण भाण्ड हैं? अथवा इसमें संशय नहीं, कि यह लिङ्ग मोक्षवृक्षके फल हैं। किंवा निर्व्वाण लक्ष्मीके शुक्लपुष्प-भूषित केशपाश भी हो सकते हैं। अथवा यह क्या कैवल्य-रूपिणी मल्लिकालताके स्तावकाभीष्टप्रद पुष्पगुच्छ हैं? वा,—मुक्तिलक्ष्मीके आनन्द-क्रीड़नक-कन्दुक हैं? या यह मुक्तिरूप उदयाचलसे उदित सुधाकर हैं या संसार-मोहान्धकार विध्वंसी दिवाकर हैं? या,—यह मङ्गल-रमणीके रमणीय लीला-दर्पण हैं?—ओह! समझ गया, और कुछ नहीं —यह सब देहियोंके बहुतेरे कर्म्मबीजके, आश्रय, अद्भुत बीजपूरक फल हैं। कारण, इसी निर्व्वाण-मुक्तिप्रद लिङ्गमें विश्व अर्थात् कर्म्म नामक निखिल विश्ववीज लय प्राप्त होता है, इसीलिये इनका नाम 'शिव-लिङ्ग' है। मेरा भाग्य उदय होने होसे महर्षि नारदने आकर वह बात कही थी, इसीसे मैं कृतार्थ हुआ! गृहपतिने इस प्रकार आनन्द-सुधारस द्वारा पारण करके शुभ दिनमें सर्व्वहितप्रद लिङ्ग स्थापनपूर्व्वक अजितेन्द्रिय जनगणके दुष्कर नियमोंको ग्रहण किया! पूतात्मा गृहपति प्रति दिन अष्टोत्तर शतकुम्भ-पूर्ण वस्त्र-पूत गङ्गाजल द्वारा शिवलिङ्गको स्नान कराकर अष्टाधिक सहस्र पुष्प-ग्रथिता नीलोत्पल-पुष्पमयी माला प्रदान करने लगे। गृहपति छः महीनेतक प्रति सार्द्ध सप्तम दिनमें मात्र कन्द, मूल और

फल भोजन करते रहे। और छः महीने-तक प्रतिपञ्चान्तमें गलित-पत्र भोजन करते रहे। छः मासमात्र वायुभोजी होकर रहे, छः मास जलविन्दु पान करते रहे। ऐसी अवस्थामें दो वर्ष अतीत हुए। गृह-पतिके जन्मसे द्वादशवर्ष वयःक्रम होनेसे, नारदका वह वाक्य मानो सत्य करनेके लिये वज्रधर इन्द्र उनके निकट समागत हुए और उन्होंने कहा कि वर प्रार्थना करो। तुम्हारे जो मनमें हो वह देता हूं। हे विप्र! मैं साक्षात् शतक्रतु हूं; तुम्हारे शुभ व्रत-कलापसे मैं प्रसन्न हुआ हूं। और मुनिकुमार, महेन्द्रकी यह बात श्रवणकर शुकवत् मधुराक्षर-सम्पन्न सार-वाक्य बोले,—हे वृत्रसूदन! हे मेघवन्! मैं जानता हूं, कि आप वज्रपाणि हैं; किन्तु आपसे मैं वर प्रार्थना न करूंगा; मेरे वरदाता शङ्कर हैं। इन्द्रने कहा,—बालक! मेरे सिवा दूसरे शङ्कर (मङ्गल-कर) और कोई नहीं हैं। मैं ही देव-ताओंका देवता हूं; इसलिये तुम मूर्खता परित्याग करके मुझसे वर प्रार्थना करो। ब्राह्मणबालकने कहा,—हे अहल्यापते! असाधु! गोत्रशत्रु! पाकशासन! जाओ; मैं स्पष्ट कहता हूं, कि पशुपतिके सिवा और किसी देवतासे प्रार्थना न करूंगा। इन्द्रने बालककी यह बात सुनते ही क्रोध-संरक्त लोचनसे वज्र उठाकर उसे भय प्रदर्शन किया। वह बालक, शत शत विद्युज्ज्वाला-समाकुल वज्र अवलोकन कर नारदका वाक्य स्मरण करते हुए भौतिविह्वल हो मूर्च्छित हुए। इसके उपरान्त तमोविनाशक गौरीपति प्रभु "उठो उठो; तुम्हारा मङ्गल हो" यह बात कहते हुए स्पर्श द्वारा मानो जीवन प्रदान करते हुए वहां आविर्भूत हुए। बालकने निद्रा-समागमसुप्त-कमलोपम नयनद्वय उन्मीलन-पूर्व्वक उठकर सामने शत सूर्य्याधिक प्रभा-सम्पन्नशम्भुको अवलोकन किया। नील-कण्ठ, ललाटलोचन, वृषध्वज, जटाजूट-शोभितचन्द्रशेखर, त्रिशूल-पिनाकप्रहरण-धारी उज्ज्वलकर्पूर-गौराङ्ग, गजचर्म्म-परिधान और वामाङ्गमें पार्व्वती आसीना;—ऐसा रूप अवलोकनकर गुरुवाक्य और शास्त्र स्मरण करते हुए, उन्हें महादेव जान आनन्द-वाष्पाकुल, रुद्धस्वर, रोमाञ्चित-देह और आत्मविस्मृत हो क्षणकाल चित्रपुत्तलिकाकी तरह निस्तब्ध भावसे रहे। वह बालक जब स्तव, नमस्कार, निवेदन कुछ भी कर न सके, तो शङ्करने ईषत् हास्य करके कहा,—शिशु गृहपति! आहा! उद्यत-वज्रपाणि इन्द्रसे तुम डर गये हो, मैं यह बात जानता हूं। डरना नहीं।—मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी। मेरे भक्तपर इन्द्र, वज्र और तो क्या स्वयं यमका भी प्रभुत्व नहीं है। इन्द्ररूपमें मैंने ही तुमको भय प्रदर्शन किया था। हे भद्र! मैं तुमको वर देता

हूं ; तुम अग्निपदको प्राप्त हो। तुम्हीं सब देवताओंके मुखिया होगे। हे अग्ने! तुम सर्व्वभूतके अन्तर्यामी हो। धर्मराज और इन्द्र, इनका राज्य दो पार्श्व में है। मध्यस्थलके दिक्‌पाल होकर तुम राज्य लाभ करो ; तुम्हारा स्थापित यह लिङ्ग सर्व्वतेजोवर्द्धक होगा और तुम्हारे नामानुसार 'अग्नीश्वर' नामसे विख्यात होगा। जो अग्नीश्वरके भक्त होंगे, उन्हें कभी भी विद्युदग्निका भय नहीं रहेगा। अग्निमान्द्य भय नहीं रहेगा और अकाल मृत्यु नहीं होगी! काशीमें यह सर्व्वसमृद्धिप्रद अग्नीश्वर शिवपूजा करनेपर दैवयोगसे यदि अन्यत्र भी उसकी मृत्यु होगी, तब भी वह अग्निलोकमें सम्मान वास करेगा। एक कल्प अग्निलोकमें वास करनेपर फिर काशीको प्राप्त होकर मुक्ति लाभ करेगा। वीरेश्वर महादेवके पूर्व्वांशमें और गङ्गाके पश्चिमतीर अवस्थित अग्नीश्वरको आराधना करनेसे मनुष्य अग्निलोकमें वास करता है। हे दिकपाल! तुम माता, पिता, बन्धु, मित्र और स्वजनगण सहित इस विमानमें आरूढ़ होकर गमन करो।" यह कहकर शिवने उनके सब बन्धु बान्धवको ला मातापिताके समक्ष गृहपतिको दिक्‌पालपदपर अभिषिक्त करके पुनः लिङ्गमें प्रवेश किया। विष्णुके दोनो पारिषदने कहा,—हे शिवशर्म्मन! तुम्हारे आगे अग्निका स्वरूप वर्णन किया। और क्या सुननेकी इच्छा है बोलो ; वह भी कहें।

एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय।

नैऋतलोक और वरुणलोक।

शिवशर्म्माने कहा,—"हे श्रीहरिचरणकमल-रेणु धूसरितालक पुरुषप्रवर द्वय! क्रमसे नैऋतादिलोककी कथा कीर्त्तन करिये।" विष्णुके दोनों पारिषदने कहा,—"हे महाभाग! सुनो ;—संयमनीपुरीकी परवर्त्तिनी,—पुण्यजनाधिष्ठिता दिक्‌पाल निऋतकी यह पवित्र नगरी है। पर-द्रोह- पराङ्मुख राक्षसगण, सदा इस स्थानमें वास करते हैं। यह जातिमात्रमें राक्षस स्वभाव हैं, किन्तु यथार्थमें 'पुण्यजन' हैं। जो नीचवर्णोत्पन्न व्यक्ति भी श्रुति-स्मृति-विहित पथपर चलते है,—स्मृति-निषिद्ध अन्नपान कदापि ग्रहण नहीं करते वा ; जो निकृष्ट जातिसे उत्पन्न होकर भी सबख हो द्विजके समीप परस्त्री, परद्रव्य और परापकारसे पराङ्मुख और धर्म्मानुगामी हैं ; जो द्विजसेवोत्पन्न अर्थ द्वारा आत्मपोषण करते हैं ; द्विजातिके साथ सम्भाषणादि कार्य्यमें जो सर्व्वदा सङ्कोचितावयव हैं, जो आहूत देनेपर 'जय, जीव, भगवन्! नाथ! स्वामिन!' कहते कहते बात करेंगे ; जो नित्य तीर्थस्नानपरायण हैं ; नित्य देव-पूजामें तत्पर और

स्वनामकीर्त्तन पुरःसर नित्य ही ही द्विजको प्रणाम करते हैं; दम, दान, दया, क्षमा, शौच इन्द्रिय-निग्रह, अचौर्य्य, सत्य और अहिंसा आदि सकल धर्म्मके मूल,—अवश्य कर्त्तव्य धर्म्मसे जो सतत उद्योगी हैं;—वह चाहे किसी नीच जातिमें जन्म ग्रहण क्यों न करें, वे सर्व्व-भोग-सम्पन्न होकर इस श्रेष्ठ पुरमें वासकरेंगी। म्लेच्छ भी यदि निर्व्वाण-प्रदायिनी काशी व्यतीत किसी अन्य उत्तम तीर्थमें आत्मघाती होकर न मरे, तो वह भी इसी लोकमें वास करेगा। जो व्यक्ति आत्मघाती हैं, वह घोरान्धकार नरकमें प्रविष्ट होते हैं, क्रमसे सहस्र नरक भोग करके वह ग्राम्य-शूकर होता है। अतएव आत्महत्याका इस दोषका दर्शन करो; कभी आत्महत्या नहीं करना। आत्मघाती व्यक्तियोंका इह-परकालमें शुभ नहीं होता। किसी किसी तत्त्वज्ञगणने केवल सर्व्वतीर्थराज सर्व्वकामप्रद प्रयागमें इच्छानुसारी मृत्युकी बात कही है। दया-धर्म्मानुगामी परोपकारपरायण और अन्त्यज भी परकालमें इस लोकमें श्रेष्ठभावसे वास करता है। इस दिक्पालका वृत्तान्त कहता हूं, क्षणकाल सुनो। पूर्व्वकालमें विन्ध्याटवीके मध्यमें निर्व्विन्ध्या नदीके तीर शवरालयस्थित जनगणमें श्रेष्ठ तीव्रपराक्रमशाली, पिङ्गाक्ष नामका एक शवरग्राम नेता था। जो वीर दूरसे हत्या करनेमें भी सक्षम था, वही पिङ्गाक्ष क्रूरकर्म्ममें पराङ्मुख था। पथिकोंके शत्रु व्याघ्रादि हिंस्रजन्तुको वह वध करता था। किरातधर्म्मसे उसकी जीविका निर्व्वाह होती थी सही, किन्तु फिर भी उसमें दयालुता थी। अन्यान्य जातिकी तरह धर्म्मपराङ्मुख होकर वह धर्म्मज्ञ व्याध,—विश्वस्त, निद्रित, मैथुनासक्त, तृष्णार्त्त, शिशु एवं गर्भलक्षण सम्पन्न पशु-पक्षियोंका वध नहीं करता था। वह व्याध श्रमार्त्त पथिकोंको विश्राम करने देता, क्षुधार्त्त पथिकोंकी क्षुधा मोचन करता एवं पादुकाहीन पथिकोंको पादुका दान करता था। विवस्त्र पथिकोंका अति कोमल मृगचर्म्म प्रदान करता और उस प्रान्तरके कान्तार-मार्गसे पथिकोंको वह अनुगमन करता था। उन लोगोंसे अर्थ ग्रहण करनेकी अभिलाषा भी नहीं करता था। पथिकोंको अभय प्रदान करता और कहता कि,—समस्त विन्ध्याटवीमें जहां हो, मेरा नाम कहनेसे दुष्ट लोगोंका भय नहीं रहेगा। पुत्र सहित पिङ्गाक्ष, नित्य ही चीरधारी तपस्वियोंको अवलोकन करता। वह भी प्रति तीर्थमें उसे आशीर्व्वाद देते थे। पिङ्गाक्षके इसरूपमें अवस्थित होनेपर विन्ध्याटवी नगरवत् निर्भय हुआ पिङ्गाक्षके भयसे, क्या दुष्ट पथिक क्या और कोई पथिकोंपर आक्रमण नहीं कर सकता था। एक दिन समीप ग्रामवासियोंने तदीय पितृ अर्थसम्पन्न चीरधारी तापसका अतीव कोलाहल सुना। यह क्षुद्र लुब्धक,

तज्जनलोभसे उन पथिकोंके विनाशपर उद्यत हो आगे जाकर पथरोध कर बैठे। पथिकोंका आयुष्काल अवशिष्ट था। इसलिये ही पिशाच मृगया करने जाकर उसी अरण्यमें और उसी पथके समीप रातसे ही अवस्थान करता था। परप्राण-नाशक पुरुषोंका मनोरथ सिद्ध नहीं होता। क्योंकि जगदीश्वरके परिरक्षित जगत्में उनके प्रसादसे ही कुशल होती है। अतएव विद्वान लोग कदापि पराये की अनिष्ट-चिन्ता न करें। क्योंकि विधाताने जो स्थिर किया है, वही होता है। अनिष्ट-चिन्तासे केवल पापसञ्चय होता है। अतएव आत्म सुखाभिलाषी व्यक्ति इष्टानिष्ट चिन्ता न करें। यदि चिन्ता करना ही हो, तो मुक्तिका उपाय ही चिन्तनीय है; और कुछ चिन्त-नीय नहीं। रजनी प्रभात होनेपर, अधिक कोलाहल होने लगा, "अरे भटगण! वध करो, मार डालो, नष्ट करो;" अरे भटगण हम चीरधारी तापस हैं, हम-लोगोंको मत मारो। रक्षा करो। अना-यास लूट रहे हो। हमलोगोंके पास जो कुछ है, ग्रहण करो। हमलोग विश्वनाथ-परायण अनाथ पथिक हैं। विश्वनाथ ही हमारे नाथ हैं। हमारे दुरदृष्ट क्रमसे वे इस समय दूर हैं। हाय! इस दुर्गम पथके प्राणभिक्षुक, हमलोगोंका और कौन नाथ है? हमलोग पिशाचके विश्वासपर इस पथसे सदा निर्भय आते जाते थे। किन्तु वह व्यक्ति भी इस वनसे दूर रहता है।" थोड़ा पिशाच चीरधारी पथिकोंकी बात सुनकर "भयभीत न होना, तुम लोग भयभीत न होना" कहता कहता उस स्थानकी ओर चला। वह तापसप्रिय भिन्न उन लोगोंके कर्म-सूत्रसे आकृष्ट होकर मानो उन लोगोंकी मूर्तिमान आयुकी तरह क्षणभरमें वहां उपस्थित हुआ। "यह कौन, यह कैसा दुराचार,—मैं पिशाच हूं। मेरे जीवित रहते मेरे प्राणतुल्य पथिकोंका धन लूटनेका अभिलाषी कौन हुआ है?" पिशाचके पितृध्वनि पापिष्ठ ताराक्ष पिशाचकी बात सुनकर धनलोभ वशतः पिशाचके प्रति पापचिन्ता की। 'यही कुलपांसन, कुलधर्म परित्याग करके अवस्थित है। हम चिरदिनसे ही इसकी भावना करते हैं। आज इसको हम निश्चय निहत करेंगे।" इस प्रकार विचार करके उन दुष्टात्माने क्रोधित होकर अपने भृत्योंको आज्ञा प्रदान,—"प्रथम इस पिशाचको तुम लोग वध करो। फिर कार्पटिक तपसियोंको वध करो।" इस बातसे ताराक्षके सब दुराचार भृत्य-गण अकेले पिशाचके साथ युद्ध करने लगे। पिशाचने युद्ध करते करते किसी तरह क्रम क्रमसे उन पथिकोंको अपने ग्रामके समीप कर लिया। उस समय बज्रयोग सङ्गतक उस

अकेले वीरका परकीय शरजालसे धनुर्व्वाण छिन्न हो गया था। देह भी छिन्न हो गई थी। (बहुतोंके साथ अकेलेका युद्ध कब तक चल सकता है?) "यदि मैं राजा होता, तो इन लोगोंको निर्म्मूल करता," इस भांति अभिलाष करते करते परार्थके लिये उस व्याधने प्राणत्याग किया। तब-तब चीरधारी तापस पथिक भी पिशाचके अधिकृत ग्रामको प्राप्त करके भय-शून्य हुए। मरणकालमें बुद्धि जिस रूपमें होती है, पारलौकिक गति उसीके अनुसार होती है। इसीलिये पिशाच निऋत-वासियोंके दिक्पालपदको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मैंने नैऋतराजका स्वरूप तुम्हारे निकट कीर्त्तन किया। नैऋत-लोकके उत्तर यह अद्भुत लोक—वरुणलोक है। जो न्यायोपार्ज्जित धन द्वारा कूप, वापी, तड़ागादि जलाशय निर्म्माण करा देते हैं, वह इस वरुणलोकमें वरुणकी तरह सम्मान सहित वास करते हैं। निर्ज्जलस्थानमें जो जलदान करते हैं; जो परार्थका सन्ताप हरण करते हैं; याचकोंको जो छत्र कमण्डलु दान करते हैं; नाना उपकरणसमन्वित जलशाला जो निर्म्माण कराते हैं; सुगन्धजलपूर्ण घट जो प्रदान करते हैं; जो अश्वत्थपादप सेचन करते हैं; जो पथके समीप वृक्ष रोपण करते हैं; जो पथ पथपर विश्राम-गृह निर्म्माण करते हैं; जो श्रान्तव्यक्तिगणका सन्ताप दूर करते हैं, ग्रीष्मकाल उपस्थित होनेपर, ग्रीष्मताप-निवारक मयूर-पुच्छादि-रचित विचित्र पङ्खे वितरण करते हैं; जो ग्रीष्म ऋतुमें रससम्पन्न, सुगन्धि सुस्निग्ध पान (शरबत, जितनेसे तृप्ति हो, उतना) प्रयत्नके साथ दान करते हैं; जो सङ्कल्प पूर्व्वक ब्राह्मणको इक्षुक्षेत्र वा नाना प्रकार प्रचुर ऐक्षव मिष्टद्रव्य दान करते हैं; जो गो-दुग्धके प्रदाता हैं; जो गोमहिषीके प्रदाता हैं; जो जलधारा-मण्डप देते हैं; जो छायामण्डप देते हैं, जो देवालयमें नित्य झाड़ू देते हैं; जो तीर्थका कर उठाकर देतेहैं, जो तीर्थपथको साफ करते हैं; और जो, भयार्त्तके प्रति हस्त उद्यत करके अभय प्रदान करते हैं;—वह वरुणलोकमें क्रीड़ा करते हुए निर्भय वास करते हैं। दुर्व्वृत्तगणने जिनके कण्ठ रस्सीसे बांधा है, उनलोगोंके मोचनकर्त्ता पुण्यात्मगण अकुतोभयसे वरुणलोकमें वास करते हैं। हे द्विज! जो पथिकोंको नौकादि उपाय योगसे नदी प्रभृति पार कराते अथवा दुःखसागरसे किसी प्रकार उत्तीर्ण करते, वह वरुणलोकवासी होते हैं। जो मानवगण, जलार्थिगणके लिये शिलादि द्वारा पवित्र नद्यादिके घाट बंधा देते हैं, वह यह वरुणलोक भोग करते रहते हैं। जो पवित्र व्यक्तिगण, शीतल जल द्वारा तृष्णार्त्तोंकी तृष्णा अपनोदन करते हैं, वह, इस वरुणलोकके सुखसमूह

भोग करते हैं। यह यादःपति प्रचेता, सर्व्व जलाशयके मुख्यतम राजा और सर्व्वकर्म्मके साक्षी हैं। सखि! ऐसे महात्मा वरुणकी उत्पत्ति सुनो। कर्द्दम प्रजापतिके शुचिष्मान नामसे विख्यात एक पुत्र थे। वह मुनि, अप्रमेयबुद्धि सुविनीत और स्थैर्य्य माधुर्य्य धैर्य्यादि गुणसम्पन्न थे। एक बार उन्होंने बालकोंके साथ अच्छोद-सरोवरमें स्नान करनेको गमन किया। जलक्रीड़ा-परायण उन मुनिबालको एक शिशुमारने हरण किया। उन मुनिकुमारके हृत होनेपर अत्याहित-शंसी शिशुगण समागत हो बालकपिता कर्द्दमके निकट जा यह वृत्तान्त कीर्त्तन किया। शिवपूजामें उपविष्ट समाधि-निश्चलचित्त कर्द्दम प्रजापतिके, शिशुपुत्रकी विपत्ति श्रवण करनेपर भी उनका चित्त शिवसे अपहृत नहीं हुआ। प्रत्युत वह सर्व्वज्ञ त्रिलोचनका अधिकतर ध्यान करने लगे। ध्यान करते करते प्रजापति, शिवके समीप ब्रह्माण्डान्तर्गत नानाविध भूतसमूह, चन्द्र, सूर्य्य, राशि, नक्षत्र, पर्व्वत, पादप, नदी, सागर, अन्तरीप, अरण्य, सरोवर, नाना देवयोनि, बहुतर देवनगर, अनेकानेक वापी, कूप, तड़ाग, कृत्रिम, क्षुद्र, नदी और पुष्करिणी देख सके। देखा,—किसी एक सरोवरमें बहुत मुनिकुमार जलक्रीड़ा आसक्त हैं। देखा,—मज्जन, उन्मज्जन, करयन्त्र-विमुक्त जलधारामें (हाथसे पिचकारी चलाकर) अभिषेचन, जलमें करताड़न द्वारा डिङ्‌मुख ननादि शब्द करते हुए सब बालक जल खेलमें आसक्त हैं। तदन्तर समाधिस्थित कर्द्दमने,—उन लोगोंके बीच देखा,—अपना शिशुपुत्र, सुविह्वल भावसे शिशुमार कर्त्तृक नीत होता है। अनन्तर किसी जलदेवीने, उस क्रूर जलजन्तुके निकटसे बलपूर्व्वक उस बालकको ग्रहण करके समुद्रको प्रदान किया। ध्यानस्थ कर्द्दमने यह भी देखा। अनन्तर प्रजापतिने देखा,—एक त्रिशूलधारी रुद्ररूपीने, रोष-ताम्रवदनसे सरित्पतिसे कहा,—जलाधिप महाभाग ज्ञानी शिवभक्त कर्द्दम प्रजापतिके बालकको अनेक क्षणतक क्यों रख छोड़ा है? शिवका सामर्थ्य क्या तुम नहीं जानते? उनकी बात सुनकर भयत्रस्त सागरने बालकको रत्नालङ्कारसे भूषित करके और उस बालकापहारी शिशुमारको बांधकर शिवके पादपद्मके समीप लाकर समर्पण किया और प्रणाम करके बोला,—हे विभो! हे अनाथनाथ! हे भक्तविपत्ति-विनाशन विश्वेश्वर! इस विषयमें हम अपराधी नहीं हैं। हे भक्तकल्पतरु शङ्कर! शिवभक्तके शिशुसन्तानको मैं नहीं ले गया, यह दुष्ट जलजन्तु ले गया था। अनन्तर रुद्ररूपी शिव-पारिषद्‌ने, शिवका मनोगत भाव जानकर उस जलजन्तुको पाशबद्ध करके शिशुके हाथमें प्रदान किया। कहा,—वत्स! अपने गृह जाओ।

मुने! तुम अपना पुत्र ग्रहण करो। यह वचन शिवपारिषद् शिवके आदिशक्रमसे कह रहे थे, कि उदार बुद्धि कर्द्दमने समाधि कालमें सब श्रवण करके समाधि त्यागकर नयनद्वय उन्मीलन-पूर्व्वक जैसे ही सामने दृष्टि फेरी देखा,—पासमें उनका शिशु है; हाथमें शिशुमारको ग्रहण किये हुआ है। कर्णयुगल रत्नका अलङ्कृत है, काकपक्ष सलिलार्द्र नयनाञ्चल आरक्तवर्ण, शरीर रूक्ष, चर्म्म सूखा और चित्त सम्भ्रमापन्न है। शिशुने प्रणाम किया। कर्द्दमने उन्हें आलिङ्गन एवं तदीय बदनकमल आघ्राण करके शिशुको मानो पुनरुत्पन्न बोध करते हुए बारम्बार वह देखने लगे। शिवपूजा करते करते समाधिस्थित जालमें कर्द्दम प्रजापतिको पञ्चशत वर्ष अतीत हुआ था। किन्तु कर्द्दमने उस दीर्घ कालको क्षणतुल्य विवेचना किया था। क्योंकि महाकालके समीप कालका तो कुछ भी प्रभुत्व नहीं है। अनन्तर पुत्र शुचिष्मानने पितासे अनुमति लेकर एवं उन्हें प्रणाम करके तपस्या करनेके लिये शीघ्र श्रीमत्काशीपुरीमें गमन किया। वहां वह एक शिवलिङ्ग स्थापन करके घोरतर तपस्यानुष्ठानमें पञ्च सहस्र वर्ष पाषाणवत् निश्चल होकर रहे। महादेव उनकी तपस्यासे तुष्ट होकर वहां आविर्भूत हुए और बोले,—"हे कर्द्दमनन्दन! बोलो कौन श्रेष्ठवर प्रदान करूं?" कर्द्दमतनयने कहा,—हे भक्तानुकम्पिन! हे नाथ! यदि मेरे प्रति प्रसन्न हो रहे हैं, तो मुझे सकलजल और जलजन्तुका आधिपत्य प्रदान करें। सर्व्वमनोरथपूरक महेश्वर, इस बातको सुनकर उन्हें अत्युत्कृष्ट वरुणपदसे अभिषिक्त किया और कहा,—'निखिल समुद्रजात रत्न, समुद्र, नदी, सरोवर, पल्वल, दीर्घिकाजल एवं स्रोतोजल और भावतीय जलाशय और पश्चिमदिगके तुम अधिपति हुए। तुम सब देवताओंके प्रिय होगी और पाश (आयुध) तुम्हारे हाथमें रहेगा। सर्व्वहितकारक और भी एक वर तुम्हें प्रदान करता हूं। तुम्हारा स्थापित यह शिवलिङ्ग, काशीमें तुम्हारे नामानुसार "वरुणेश" विख्यात होकर उत्तम सिद्धि प्रदान करेगा।' मणिकर्णीश लिङ्गके नैऋतकोणमें स्थापित यह लिङ्ग सतत आराधना करनेपर पुरुषोंकी सर्व्वविध जड़ता दूर होती है। जो वरुणेशशिवलिङ्गका भक्त है, उसे कभी जलसे भय नहीं रहता। कभी अपघात मृत्यु नहीं होगी। जलोदर रोगका भय नहीं होगा। नीरस अन्न-पान भी वरुणेश्वरके स्मरणसे सरस होता है इस विषयमें संशय नहीं। हे द्विज! शम्भु यह बात कहकर अन्तर्हित हुये। तदवधि कर्द्दम पुत्र भी वरुण होकर अपने बन्धु बान्धव सहित इस लोकको अलङ्कृत करते हुए रहने लगे। यह वरुणलोकका स्वरूप तुम्हारे समीप कीर्त्तन किया। इसकी

सुननेसे मनुष्य कभी अपमृत्युग्रस्त नहीं होगा।

द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय।

वायुलोक और कुवेरलोक।

विष्णुके दोनो पारिषद्ने कहा,—हे महाभाग्यनिधि द्विज! वरुण नगरीके उत्तरभागमें यह वायुकी गन्धवती नाम्नी पवित्र नगरी अवलोकन करो। इस नगरीमें प्रभञ्जन नामे दिक्पति अवस्थित हैं। वायुने महादेवकी आराधना करके यहां दिक्पालत्व प्राप्त किया है। पूर्व्वकालमें विख्यात पूतात्मा नामे कश्यपनन्दन शिवराजधानी वाराणसीमें पवनेश्वर नामक सुपावन लिङ्ग स्थापित करके शतायुत वर्षतक महातपस्या की थी। इन शिवलिङ्गके दर्शनसे ही मानव भूतात्मा होता एवं पापकञ्चुक मुक्त होकर अन्तमें पवनलोकमें वास करता है। अनन्त तपःफलदाता महेश्वर शिव, पवनके उग्र तपस्याबलसे उस लिङ्गमें ज्योतिरूपमें आविर्भूत हुए और करुणामृत सागर शम्भु प्रसन्नचित्तसे बोले,—हे भूतात्मन्! उठो उठो। हे सुव्रत! वरकी प्रार्थना करो! हे भूतात्मन्! तुमने जो यह उग्र तपस्या और शिवलिङ्गकी आराधना की है, इससे सचराचर त्रैलोक्यमें तुम्हारा अदेय कुछ भी नहीं है। पूतात्माने कहा,—'हे देवगणके अभयप्रद देवदेव महादेव! आप ब्रह्मा हैं, नारायण और इन्द्रादि सर्व्वदेवगणके पदप्रदाता हैं। हे प्रभो! सब वेद तन्न तन्न शब्द करके आपका स्वरूप कीर्त्तन करते हुए शतपथत्वको प्राप्त हुए हैं। तथापि आप कैसे हैं, सो जान नहीं सके हैं। हे प्रभो! प्रमथेश! आप ब्रह्मा-विष्णु-वाचस्पतिके भी वचनगोचर नहीं हैं। तब मैं सामान्य पुरुष आपका स्तव करनेमें किस रूपसे समर्थ हूंगा? हे ईश! भक्ति ही केवल जोर करके स्तव करनेमें मुझे प्रवृत्त करती है। हे जगन्नाथ क्या करें? हमारी इन्द्रियगण हमारे वशीभूत नहीं हैं। विश्व और आपमें भेद नहीं है, इस हेतु आप अद्वितीय हैं। आप सर्व्वव्यापी हैं; आप स्तुत्य एवं स्तुति हैं; आप सगुण और निर्गुण हैं। सृष्टिके पूर्व्वमें नाम-रूप-विवर्ज्जित एक आप ही हैं। योगिगण भी परमार्थतः आपका तत्त्व भेद नहीं कर सकते। स्वच्छन्द विहारिन् प्रभो! जब आप अकेले क्रीड़ा कर न सके, तो उस समय आपकी जो इच्छा उत्पन्न हुई, वही आपकी सेवनीय शक्ति हुई। आप एक ही शिव शक्ति भेदसे द्वित्व प्राप्त हुये हैं। आप भगवन् शिव ज्ञानरूपी हैं; और आपकी इच्छा शक्तिस्वरूपा है। शिव शक्ति दोनो आप स्वयं हैं। आपने लीलाक्रमसे शक्तिको उत्पादन किया। वही क्रिया शक्ति ही

यह समस्त जगत् है। भवानी पतिज्ञान शक्ति, उमा इच्छाशक्ति और यह विश्व-क्रियात्मशक्ति है। अतएव आप इस जगतके कारण ब्रह्मा हैं। आप दक्षिणाङ्ग हैं; विष्णु आपके वामाङ्ग हैं; चन्द्र, सूर्य्य एवं अग्नि आपके त्रिनेत्र हैं, वेदत्रय आपके निश्वास हैं। आपके घर्म्मसे सागर चतुष्टय है; वायु आपके कर्ण हैं दशदिक् बाहु समूह हैं और ब्राह्मण आपके मुख हैं। क्षत्रिय आपके बाहुयुगल हैं। वैश्य आपके उरुदेशसे उत्पन्न हैं। हे ईशान! शूद्र जाति आपके यद्दुगल पदद्वय हैं। हे प्रभो। मेघजाल आपके केशकलाप हैं। आपने पूर्व्वमें प्रकृति-पुरुष रूपमें यह ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्डके मध्यमें यह अखिल चराचर विश्व सृष्टि की है। हे जगन्मय। अतएव, जगत्का कुछ भी आपसे भिन्न नहीं है। सर्व्वभूत आपमें वर्त्तमान हैं। आप भी सर्व्वभूतमय हैं, आपको नमस्कार। आपको नमस्कार। आपको नमस्कार। आपको नमस्कार। हे नाथ। यही मुझे वर दो—जिसमें नाथ आपमें हमारी बुद्धि स्थिर रहे;—इसी वरकी मैं प्रार्थना करता हूं। पूतात्माके ऐसी बात कहनेपर, प्रभु-देवदेवने पूतात्माको अपनी अष्टमूर्त्तिके अन्तर्गतकर दिक्पालपदपर स्थापन किया, फिर बोले,—मत्स्वरूपमें तुम सर्व्वग एवं सर्व्वतत्त्व-ज्ञाता होगी और तुम्हीं सबके जीवन स्वरूप होगी। जो मनुष्य तुम्हारा प्रतिष्ठित यह दिव्यलिङ्ग अवलोकन करेंगे, वे सर्व्वभोग-सम्पन्न होकर तुम्हारी लोक-प्रापिका सुख लाभ करेंगे। मनुष्य जन्ममें एक बार भी पवमानेश्वर शिव लिङ्गको सुगन्धि जल द्वारा स्नपन और सुगन्ध चन्दन पुष्पादि द्वारा पूजा करनेसे मेरे लोक-में सम्मान सहित वास करता है। ज्येष्ठेश लिङ्गके पश्चिम भागमें एवं वायु-कुण्डके उत्तरमें अवस्थित पवमानेश्वर लिङ्गकी आराधना करनेसे लोकमें तत्क्षणात् पूत होगा। देवदेव इस प्रकार सब वर देकर उस लिङ्गमें लयको प्राप्त हुए। विष्णुके दोनो पारिषदने कहा,—गन्धवती पुरीका स्वरूप इस प्रकार तुम्हारे आगे वर्णन किया। इसके पूर्व्वभागमें कुबेरकी यह शोभामयी अलकापुरी है। इस पुरीका अधिपति भक्तियोगसे शिवका मित्र हुआ है, यह शिवकी आराधनाके बलसे पद्म-शङ्ख प्रमुख निधिगणके दाता और भोक्ता हैं।" शिवशर्म्माने कहा,—"यह कौन हैं? किसके पुत्र हैं? सदा शिवमें इनकी कितनी भक्ति थी, जो उन देवदेव दुर्ज्जटिके मित्रता-पदको प्राप्त हुए? आपके वचनामृत-पान-परितृप्त सुस्थिर चित्तसे यह कथा प्रसङ्ग कर्णकुहरमें प्रविष्ट होनेसे यह सुननेके लिये उत्कण्ठित हुआ है। विष्णुके दोनो पारिषद्ने कहा,—हे महाप्राज्ञ। हे विशुद्धात्मन्! हे सतीर्थ-

सलिल-प्रक्षालित-अशेषजन्मसञ्चिती-पापराशि शिवशर्म्मन्! तुम हमारे प्रेम सम्पन्न सुहृत् हो, तुम्हारे निकट अवक्तव्य क्या है? विशेषतः साधुगणके साथ कथोपकथन सर्व्वमङ्गलवृद्धिका हेतु है। काम्पिल्य नगरके यज्ञविद्या-विशारद सोमयाजि-वंशोत्पन्न यज्ञदत्त दीक्षित नामे एक ब्राह्मण थे। वह वेदाङ्ग-वेदार्थसे अभिज्ञ थे, वेदोक्ताचार पालनमें दक्ष, राजमान्य, बहुधनाढ्य, वदान्य कीर्तिमान्, अग्निशुश्रूषा-परायण और वेदपाठमें निरत थे। चन्द्रबिम्बसमाकार गुणनिधि नामे, उनका पुत्र उपनीत होकर अनेक विद्याभ्यास करने लगा। किन्तु कुछ दिन पीछे, गुणनिधि पिताके अज्ञातमें द्यूतक्रीड़ामें आसक्त हुआ। गुणनिधि माताके निकटसे अनेकबार धन ले लेकर द्युतकारोंको प्रदान करने लगा, इस प्रकार द्युतकारोंके साथ उसने बन्धुत्व स्थापन किया। गुणनिधिने ब्राह्मणाचार परित्याग किया, स्नान सन्ध्यावर्ज्जित हुआ; वेद, शास्त्र, देवता और ब्राह्मणका निन्दक हो गया, स्मृत्युक्त आचार उसका न रहा; गीत वाद्य. आमोदमें ही वह रहता; नट, पाखण्ड और भण्डगणके साथ उसका बहुत ही प्रेम हुआ। जननीके प्रेरित करनेपर भी गुणनिधि पिताके समीप नहीं जाता था। "अहो! पुत्र गुणनिधिको मैं गृहमें नहीं देखता, वह कहां जाता है; क्या करता है?" गृहकार्यान्तर व्यग्र दीक्षित, पत्नीसे जब जब यह बात पूछते थे, दीक्षितायिनी तभी तभी कहतीं, "स्नानके बाद थोड़ी देर ठहर देवताओंकी पूजा और वेदाध्ययन कर फिर पढ़नेके निमित्त अभी वह दो तीन बन्धुओंके साथ बाहर गया है।" एकमात्र पुत्रके स्नेहसे, गुणनिधिकी माता स्वामीके निकट प्रतारणा करती थीं। दीक्षित, पुत्रके कर्म्म और चरित्र कुछ भी नहीं जानते थे। अनन्तर गुणनिधिका षोड़श वर्षमें 'केशान्त' संस्कार समाधा करके गृह्योक्त विधिक्रमसे उनका विवाह किया। स्नेहार्द्र-हृदया गुणनिधि-जननी सदा मृदुभावसे शासन करती कहती,—"तुम्हारे पिता क्रोधी हैं यह सब काम अब न करना; यदि वह तुम्हारे चरित्र कार्य्यकलाप जान जायेंगे, तो तुम्हें और हमें भी दण्ड देंगे। मैं तुम्हारे पिताके आगे सदा तुम्हारा कुकार्य्य छिपा रखती हूं। तुम्हारे पिता धनी नहीं हैं, सदाचारसे ही लोकमान्य हैं। बच्चा! सद्विद्या और सत्सङ्ग ही ब्राह्मणका धन है। तुम्हारे पूर्व्वपितामहगण अनुचान अर्थात् साङ्ग आख्यासह वेदाध्यायी, सच्छ्रोत्रिय, और सोमयाजीसे दीक्षित, इस दो नामको प्राप्त हुए हैं। दुर्ज्जन संसर्ग त्यागकर साधुसङ्गमें रत हो। सद्विद्यामें मन दो, ब्राह्मणका आचार अनुष्ठान करो। गुणनिधि! तुम्हारा ऊनविंशति वर्ष वयःक्रम, और मधुरभाषिणी

साध्वी तुम्हारी पत्नीका वयःक्रम षोड़श वर्ष है; रूप, वय, क्रम, कुलशीलमें यह तुम्हारे अनुरूपा है। इस सच्चरित्रशालिनीके साथ मिलकर रहो। पिताके भक्त हो। तुम्हारे श्वशुर भी गुण और शीलमें सर्व्वत्र मान्य हैं। बालक! उनके आगे भी क्या तुम्हें लज्जा नहीं है? पुत्र! तुम्हारे मामा भी विद्या, स्वभाव और वंशादिद्वारा अतुलनीय हैं; तुम क्या उनका भी भय नहीं करते? वत्स! तुम दोनो वंशसे परिशुद्ध हो; फिर ऐसे क्यों हुए? प्रतिगृहके ब्राह्मणकुमारको देखो,—गृहमें भी अपने पिताके सुविनीत शिष्योंको देखो। पुत्र! जिस समय राजा भी तुम्हारे दुष्कार्य्यकी बात सुनेंगे, उसी समय वह तुम्हारे पिताके ऊपर वीतश्रद्ध होकर वृत्ति बन्द कर देंगे। अब भी लोग, तुम्हारे इस कामको लड़कपन कहते हैं। और कुछ दिनके बाद उपहास करेंगे और कहेंगे, 'बस दीक्षितका! हो गई हो गई।' उस समय सभी तुम्हारे पिताको और हमें, पुत्र माताका चरित्रानुसारी होता है, उसका पिता भी श्रुतिस्मृति मार्गावलम्बी होकर भी पापिष्ठ है, इस प्रकार दुष्टवाक्य द्वारा दोषी बनायेंगे। मैं शिवचरणमें निहितहृदया हूं; मेरे चरित्रके वही प्रकृत साक्षी हैं। मैंने ऋतुस्नानके दिन भी तो किसी दुष्टव्यक्तिका मुंह नहीं देखा। ओह! विधि ही बलवान् है! विधिबलसे ही तू ऐसा कुलाङ्गार जन्मा है।"

जननीके क्षण क्षण ऐसी शिक्षा देनेपर भी अति दुर्द्दम, दुर्ब्बुद्धि गुणनिधिने वह असदाचरण त्याग नहीं किया, व्यसनासक्त था न। मृगया, मद्य, पैशुन्य, वेश्या, चौर्य्य, द्यूतक्रीड़ा और परदारासक्ति, इन सब व्यसन द्वारा जगतमें किसका सर्व्वनाश नहीं होता? वह दुर्म्मति घरमें ताम्रपीतलादिके पात्र और वस्त्रादि जो जो देख पाता, वह सब ले जाकर द्यूतिकारोंको अर्पण करता। एक दिन पिताकी नवरत्नमय अंगूठी, निद्रापन्ना जननीके हाथसे लेकर गुणनिधिने द्यूतिकारके हाथमें प्रदान किया। फिर एक दिन दीक्षित, जब राजभवनसे आते थे, तो ऐसे समय दैवात् एक द्यूतिकारके हाथमें अपनी अंगूठी देखकर उन्होंने पहचाना और उस द्यूतकारसे कहा,—"तुमने यह अंगूठी कहां पाई?" निर्व्वन्धके साथ बार बार इसी प्रकार पूछे जानेपर द्युतिकारने दीक्षितसे कहा,—'हे ब्राह्मण! मेरा इतना तिरस्कार क्यों करते हो? मैंने क्या चोरी करके यह अंगूठी पाई है? आपके पुत्रने ही यह मुझे दी है। पूर्वदिन, आपके पुत्रने मेरी माताका एक शाटक जीत लिया है। आपके पुत्रने केवल मुझे ही यह अंगूठी दी है, ऐसा नहीं, दूसरे द्युतिकारोंको भी प्रचुर धन दिया है। रत्न, स्वर्णरजतातिरिक्त धन, वस्त्र और भृङ्गार प्रभृति कांस्य, ताम्रमय विचित्र पात्र भी दिया है;

द्यूतिकार प्रतिदिन उसे नङ्गा करके वस्तु-जात छीन लेते हैं। भूमण्डलमें उसके जैसा द्यूतासक्त और नहीं है। विप्र! आज भी आप अविनय और अत्याचारके पण्डित जुआचोरके शिरोमणि पुत्रको नहीं जानते!" दीक्षितने यह बात सुनकर, लज्जाभयसे गरदन नीचीकर मस्तकमें वस्त्र आच्छादन पुरःसर निज गृहमें प्रवेश किया। फिर महापतिव्रता अपनी पत्नीसे बोले,—'दीक्षितायिनी! तुम कहां हो; पुत्र गुणनिधि कहां है? या ठहरो उससे मुझे प्रयोजन ही क्या है? हमारी वह उत्तम अंगूठी कहां है? गात्र उद्वर्त्तन करनेके समय तुमने जो मेरी उङ्गलीसे नवरत्नमय अंगूठी परिहासच्छलसे हरण कर ली थी; वह शीघ्र मुझे लाकर दो।" दीक्षितायिनी, उनकी यह बात सुनकर भीत हुईं। फिर बोलीं; इस समय मध्याह्नकर्त्तव्य कर्मनिष्पादन कर रही हूं, देवपूजाके आयोजनादि कार्य्यमें व्यस्त हूं, हे प्रियातिथि! अतिथिगणका समय भी अतिक्रान्त है, सो यह मात्र पकवान प्रस्तुत करनेमें मैं व्यग्र होकर किस मात्रके भीतर वह अंगूठी रखी है, भूल गई हूं; स्मरण नहीं है।" दीक्षितने कहा,—"ओहो! सत्पुत्र जननि! नित्यसत्यभाषिणि! मैं तुमसे जब जब पूछता हूं, कि 'पुत्र कहां गया, तो तुम उत्तर देती हो 'नाथ! यहां अध्ययन करके दो तीन मित्रके साथ अध्यायनार्थ मात्र बाहर गया है।' पत्नी! मञ्जिष्ठारञ्जित जो साड़ी, मैंने तुम्हें दी थी, जो इस खूंटीपर झूल रही थी, वह कहां है? भय त्यागकर सत्य बोलो। वह मणिमण्डित भृङ्गार भी नहीं दिखाई देता। पट्टसूत्रमयी वह राजदत्त त्रिपटी (दुपट्टा) कहां है? दक्षिण देशका वह कटोरा कहां है? वह गौड़का ताम्रघट कहां है? वह गजदन्तनिर्म्मिता आनन्द-कौतुकविधायिनी क्षुद्र खाट कहां है? पर्व्वतदेशीया चन्द्रकान्तमणिनिर्म्मिता उन्नत हस्ताग्रकी दीपवाहिनी वह अलङ्कृता शालभञ्जिका कहां है? हे कुलजे! अधिक बोलके और क्या होगा? तुम्हारे ऊपर मेरा क्रोध करना भी वृथा है। मैं पुनःविवाह किये बिना आहार नहीं करूंगा। मेरे उस पुत्रके कुलदूषक और दुष्ट होनेसे मैं निःसन्तान हो रहा हूं। उठो, कुश और जल ले आओ, मैं उसे तिलाञ्जलि दूं। कुलपांसन-कुपुत्रवान् होनेकी अपेक्षा मनुष्यका अपुत्रक होना अच्छा है! यह चिरन्तन नीति है, कि वंशके हितके लिये एक जनका त्याग करना।" दीक्षितने स्नान और अन्यान्य नित्यकार्य्य अनुष्ठान करके उसी दिन ही किसी एक श्रोत्रियकी कन्या पाकर उसका पाणिग्रहण किया। दीक्षितपुत्र गुणनिधि, इस वृत्तान्तको सुनकर अपने अदृष्टकी निन्दा करके कोई दिक् अवलम्बनपूर्व्वक निष्क्रान्त हुआ।

फिर गुणनिधि अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हुआ; सोचने लगा, "कहां जाऊं, क्या करूं मैं विद्वान धनवान नहीं हूं देशान्तरमें धनवान् या विद्वान ही पुरुष सुखसे रह सकता है तब भी धनवानको चोरका भय है, किन्तु विद्वान सर्व्वत्र अभय है। कहां हमारा यागशील ब्राह्मणके वंशमें जन्म और कहां यह व्यसन! आकाश-पातालका प्रभेद। ओह! भावी-कर्म्मयोजक विधाता ही बलवान् है। मैं भिक्षा करना भी नहीं जानता, मेरा परिचित व्यक्ति यहां कोई नहीं; पासमें धन भी कुछ नहीं, इस स्थानमें मेरी रक्षा किस प्रकार होगी? सूर्य्य उदय होनेसे पूर्व्व नित्य हमारी जननी मिष्ट भोजन करनेको देती थीं, आज यहां उसको किसके निकट प्रार्थना करूंगा। मा तो अब यहां नहीं हैं।" गुणनिधिके इसी प्रकार चिन्ता करते सूर्य्य अस्तगत हुए। ठीक इसी समय कोई शैव मनुष्य, आज शिव-रात्रि है, इससे उपवासी होकर शिवपूजा करनेके निमित्त महान् उपहार सब ग्रहण करके नगरके वहिर्भागमें आया। वह क्षुधित गुणनिधि पक्वान्नके गन्धआघ्राणसे उस शैवका अनुगामी हुआ। गुणनिधिने विचार किया, कि रात्रिमें शिवनिवेदित यह अन्न मैं लूंगा। गुणनिधि ऐसी ही आशा अवलम्बन करके शिवमन्दिरके द्वारपर उपनिवेशनपूर्व्वक वह भक्तानुष्ठित महापूजा अवलोकन करने लगा। भक्तगण (पूजान्तमें) नृत्य गीतादि करके जिस समय कुछ कालके लिये निद्रित हुए, उसी समय नैवेद्य ग्रहण करनेके लिये दीक्षितपुत्र मन्दिरमें प्रविष्ट हुआ। मन्दिरका दीप अतिक्षीणप्रभ है; यह देखकर गुणनिधिने पक्वान्न देखनेके लिये निज वस्त्राञ्चलसे बत्ती तय्यार करके उससे प्रदीप उद्दीपित कर दिया। फिर पक्वान्न ग्रहण करके शीघ्र बाहर आते समय उसके पादतलाघातसे एक सोये व्यक्तिकी निद्रा भङ्ग हो गई। "कौन, कौन जल्द जल्द जा रहा है,—यह चोर है धरो।" प्रबुद्ध व्यक्तिके यह बात कहते ही मात्र नगररक्षकने दौड़कर उस गुणनिधिपर आघात करनेसे क्षणमध्यमें वह पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। शिवरात्रि-उपवास-पुण्यके भवितव्यता बलसे, गुणनिधि उस नैवेद्यका भोजन नहीं कर सका। अनन्तर पाशमुद्गरधारी विकटाकार यमदूत आकर उसे यमपुरी ले जानेके लिये बन्धन करने लगे। इसी मध्यमें शूलपाणि शिवपारिषद्गण गुणनिधिको लेजानेके लिये किङ्किणीजालमण्डित दिव्य विमान लेकर वहां उपस्थित हुए। यमकिङ्कर शिवदूतके दर्शनसे भयभीत होकर प्रणामपूर्व्वक उनसे बोले, "हे शिवपारिषद्गण! यह ब्राह्मण बड़ा ही दुर्व्वृत्त है। यह कुलाचारका विपरीतगामी मातापिताके वचनमें पराङ्मुख, सत्यभ्रष्ट, शौचभ्रष्ट और स्नान सन्ध्यावर्ज्जित है।

इसके अन्य कर्म्मोंकी बात दूर रखो, इस जगह प्रत्यक्ष देखो, यह निर्म्माल्य इस व्यक्तिने हरण किया है; अतएव इस, भक्ष्द्रव्य व्यक्तिका अस्पृश्य शिवनिर्म्माल्यभोक्तृगणका शिवनिर्म्माल्यलङ्घनकारीगणका और शिवनिर्म्माल्यदातृगणका स्पर्श भी अपवित्रताविधायक है। वरञ्च विष आलोड़न करके स्नान करना अच्छा है, एकबार अनशन करना भी श्रेयः है; किन्तु प्राण कण्ठगत होनेपर भी शिवस्व सेवन नहीं करना। धर्म्मविषयमें आपका जैसा प्रमाण है, हमारा वैसा नहीं; अतएव हे शिवपारिषद्गण! यदि इसका लेशमात्र भी धर्म्म हो, तो हमलोग वह सुनना चाहते हैं।" उनकी यह बात सुनकर शिवपारिषद्गण बोले,—"हे यमकिङ्करगण! तुम्हारी तरह स्थूलदर्शी व्यक्ति सूक्ष्मदर्शियोंका लक्ष्य सूक्ष्म जो शिव धर्म्म है, वह कैसे जान सकेगा? इस व्यक्तिने यहां जो सत्कर्म्म किया है, वह सुनो! रजनीमें अपना वस्त्राञ्चल फाड़कर उसके द्वारा निर्म्मित बत्तीको प्रदीपमें जलाकर शिवलिङ्गमस्तकपतित दीपच्छाया इस व्यक्तिने निवारण की है। शिवमन्दिरमें और भी अति उत्कृष्टधर्म्म इसका सञ्चित हुआ है, शिवनाम पाठकोंके निकट प्रसङ्गक्रमसे इसने शिव नाम समूह श्रवण किया है। भक्त द्वारा यथाविधि अनुष्ठीयमान शिवपूजा, इस व्यक्तिने शिवचतुर्द्दशीको उपवासी होकर, स्थिरचित्तसे निरीक्षण किया है। हे दूतगण! इसक्षण पापमुक्त यह द्विजवर, कलिङ्गदेशके राजा होगी; तुमलोग जहांसे आये हो, वहां जाओ।" वह द्विज, इस प्रकार शिवपारिषद्गण द्वारा यमदूतोंके हाथसे मोचित होकर कलिङ्गाधिपति अरिन्दमके घर पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए; तब उनका नाम पड़ा 'दम'। युवा दमने पिताकी परलोकप्राप्तिपर राज्य प्राप्त किया। हे द्विज! वह दुर्द्दम भूपति दम यह नहीं जानते थे, कि सर्व्वशिवालयमें दीपदान व्यतीत और भी कुछ धर्म्म है। राज्य पाते ही उन्होंने अपने राज्यस्थित ग्रामाधीश-समुदयको बुलाकर आज्ञा दी कि, "जिसके जिसके ग्राममें जितने जितने शिवालय हैं, वह वह ग्रामाध्यक्ष, उन उन शिवालयमें नित्य दीप प्रज्वालन करें; इस विषयमें विचार न करें। जो हमारी आज्ञा भङ्ग करेगा, वह हमारा दण्डनीय होगा। मैं निश्चय उसका शिरच्छेदन करूंगा।" इस कारण दमभूपतिके भयसे प्रति शिवालयमें दीप प्रज्वालित होने लगा। राजा दम इस धर्म्मप्रभावसेही यावज्जीवन महती धर्म्मसम्पत्ति भोग करके यथासमय कालधर्म्मको प्राप्त हुए। दम राजा, पूर्व्वजन्मके दीपदानसंस्कारवशसे, शिवालयमें बहुत दीप प्रज्वालन करके उसी पुण्यबलसे, इस समय रत्नदीप-शिखालीके आश्रय अलकापति हुए।

शिवकी प्रति अल्प सत्कार्य्य करनेपर भी इस रूपसे कालमें उसका महत् फल होता है। यह जानकर आत्मसुखाभिलाषी व्यक्ति शिवका भजन करेंगी। कहां उस सर्व्वधर्म्म पराङ्मुख दीक्षित-सन्तानने, निजप्रयोजन-सिद्धिके लिये प्रदीपमें बत्ती जलाकर शिवलिङ्ग मस्तक निपतित दीपच्छाया निवारण की थी, उसी पुण्यबलसे, कलिङ्गदेशका सतत धर्म्मनिष्ठ राजा हुआ; पूर्व्वजन्मके संस्कार-वशसे शिवालयोंमें दीप दान भी किया। शिवशर्म्मन्! विचारकर देखो; इसके बाद कुबेर होकर गुणनिधि इस समय जो भोग कर रहे हैं, वह दिक्पालपदमें भी कहा है? विष्णुके दोनो पारि षदने कहा, हे विप्र! कुबेर इस तरह शिवके साथ सर्व्वदा सखित्वको प्राप्त हुए, एक मनसे वह भी सुनो; कहता हूं। पूर्व्व पाद्मकल्पमें ब्रह्माके मानसपुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ। विश्रवाके पुत्र वैश्रवण हुए; अत्युग्र तपस्या द्वारा शिवकी आराधना करके वैश्रवण इस विश्वकर्म्म-निर्म्मित अलकानगरीको भोग करते रहे। पाद्म कल्प बीतनेपर एवं मेघवाहन कल्प प्रवृत्त होनेपर, वही यज्ञदत्त-तनय गुणनिधिने, कुबेर हो प्राक्तन दीपमात्र-उद्द्योतन फल द्वारा शिव भक्तिका प्रभाव जानकर आत्मज्ञानदायिनी वाराणसीमें जाकर सुदुःसह तपस्या की। कुबेरने, प्राक्तन सामान्य दीप उद्द्योतन स्मरण करके इसबार सद्भावकुसुमपूजित शिवलिङ्गस्थापन करके मनोरूप रत्नदीप शिव समीपमें प्रज्ज्वालित किया। शिव ही इस दीपकी बत्ती, शिवकी अनन्यभक्ति इस दीपका तैल, शिवतेजोध्यानसे यह निश्चल, शिवके साथ एकतत्व ज्ञान ही दीपका उत्तम पात्र; यह दीप तपस्यारूपी अग्नि-द्वारा उद्दीपित, कामक्रोधादि महाविघ्नरूपी पतङ्गाघात भी दीपमें नहीं प्राणवायुसे निरोधप्रयुक्त यह प्रदीप वायुसम्पर्कशून्य और निर्म्मल ज्योति अवलोकन प्रयुक्त सनिर्म्मल था। इस प्रकार उन्होंने दश लक्ष वर्षतक तपस्या की। शरीर अस्थिचर्म्मावशिष्ट हुआ। अनन्तर विशालाक्षीसह स्वयं विश्वेश्वर, अलकापतिको शिवलिङ्गमें चित्तसमाधान पूर्व्वक स्थाणुस्वरूपमें अवस्थित देखकर प्रसन्नचित्तसे बोले, "अलकापते! और तपस्याका प्रयोजन नहीं है, वर देता हूं।" उन तपोधन कुबेरने जैसे ही नेत्र खोलकर देखा, वैसे ही वह उदीयमान सहस्र सूर्य्यकी अपेक्षा अधिक तेजःसम्पन्न उमासहचर चन्द्रमौलि श्रीकण्ठको सम्मुख देख सके। कुबेर, शिवतेजसे प्रतिहत-दृष्टि होकर लोचनद्वय पुनर्निमीलित करके उस मनोरथपथके दूरवर्त्ती देवदेव ईश्वरसे बोले, हे नाथ! अपने श्रीचरण दर्शनसे हमारे नेत्रको सामर्थ्य प्रदान करिये; यही हमारा वर है। हे ईश! आपको यदि साक्षात् देख सकूं, तो और वरसे

काम ही क्या है? हे प्रमिथीश्वर आपको नमस्कार करता हूं। देवदेव उमापतिने, कुबेरकी यह बात सुनकर करतल द्वारा स्पर्श करके उनको दृष्टिसामर्थ्य प्रदान किया। तब कुबेर, दोनो नेत्र खोलते ही प्रथमतः उमाको ही देख सके, "शिवके समीप यह सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी रमणी कौन है? इस रमणीने क्या मुझसे भी अधिक तपस्या की है? इस रमणीका क्या रूप, क्या प्रेम! कैसी असामान्य सौभाग्यश्री है।" ऐसी बात करते करते बारंबार क्रूर दृष्टिसे वामनेत्र द्वारा उमाको अवलोकन करनेसे कुबेरका वामनेत्र स्फुटित हुआ। फिर देवीने देवदेवसे कहा, यह दुष्ट तपस्वी, किसलिये पुनः पुनः हमारे प्रति दृष्टिपात करके हमारे तपःप्रभाको अधिक्षिप्तकर बात करता है? हमारे रूप, प्रेम और सौभाग्यसम्पत्तिके प्रति असूया करते हुए दक्षिणनेत्र द्वारा फिर हमारी ओर बार बार देखता है। देवीकी यह बात सुनकर प्रभु महेश्वर हास्य करके बोले, उमे! यह तुम्हारा पुत्र है; दुष्टभावसे तुम्हें नहीं देखता है, तुम्हारे तपःप्रभावका अधिक वर्णना कर रहा है।" ईश्वर देवीसे इस प्रकार कहकर कुबेरसे फिर बोले, वत्स! तुम्हारी इस तपस्यासे परितुष्ट होकर तुमको मैं यह वर देता हूं, कि तुम निधिसमूहके अधिपति हो; गुह्यकोंके अधीश्वर हो; हे सुव्रत! तुम यक्षगण, किन्नरगण और राजगणके राजा हो; तुम राक्षसगणके प्रभु हो; सबके धनदाता हो। हमारे साथ तुम्हारा सखित्व हुआ, मित्र तुम्हारे प्रीतिवर्द्धनके लिये मैं तुम्हारे समीपवर्त्ती स्थानमें अलकाके निकट ही सदा वास करूंगा। आओ इनके (उमाके) चरणयुगलपर निपतित हो, यह तुम्हारी जननी हैं, देवदेव शिव, कुबेरको यह सब वर देकर शिवासे फिर बोले, हे देवेशि! इस तपस्वी तनयके प्रति प्रसन्ना हो, देवीने कहा, वत्स! सदा महादेवके प्रति तुम्हारी निश्चला भक्ति रहे। वामनेत्र तुम्हारा फूट गया है, इसलिये तुम्हारा नाम एकपिङ्ग हो। देवदेवने तुम्हें जो सब वर प्रदान किया है, वह समस्त तदनुसार ही होगा। हे पुत्र! हमारे रूपके प्रति ईर्षा करनेसे तुम कुबेरके नामसे विख्यात होगी। तुम्हारा स्थापित यह परम शिवलिङ्ग साधकोंको सिद्धिप्रद, सर्व्वपापहर और तुम्हारे नाम अनुसार ही प्रसिद्ध होगा। जो मनुष्य, कुबेरेश्वर लिङ्गका दर्शन करेंगे, वह धनहीन नहीं होंगे, उनका मित्रसे वियोग नहीं होगा और स्वजनविच्छेद नहीं होगा। विश्वेश्वरके दक्षिण अंशमें अवस्थित, इन कुबेरेश्वर लिङ्गकी जो मनुष्य, पूजा करेंगे, वह पाप, दारिद्र्य, असुखसे लिप्त नहीं होंगे। देवी सहित महेश्वर देवने, कुबे-

रको यह सब वर देकर, स्वकीय परम-धामको गमन किया। विष्णु पारिषद्द्वयने कहा, इन धनदने इस प्रकार शिवका परम सखित्व प्राप्त किया। कैलासपर्व्वतमें अलकानगरीके समीप शिवका आलय है। यक्षेश्वरोंकी पुरीका यह स्वरूप तुम्हारे निकट वर्णन किया। इसके सुननेसे, मनुष्य निश्चय ही सर्व्वपापसे मुक्ति लाभ करेगा!

त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

चतुर्द्दश अध्याय।

ईशानलोक और चन्द्रलोक।

विष्णुपारिषद्द्वयने कहा, अलकाके सम्मुख वा पूर्व्वभागमें यह महोदया ईशानीपुरी है। इसमें शिवभक्त तपोधन वास करते हैं। जो शिवस्मरणमें आसक्त हैं, जो शिवव्रतपरायण हैं, जिसने सकल कर्म्म शिवमें अर्पण किया है, जो सर्व्वदा शिव-पूजामें रत हैं, वह सब मनुष्य, "हमारा स्वर्ग भोग हो" इसतरह सकाम भावसे इस प्रकार तपश्चर्य्या करनेसे इस रमणीय रुद्रपुरमें रुद्ररूपसे वास करते हैं। अज, एकपात्, अहिर्व्रध्न प्रमुख त्रिशूलधारी एकादशरुद्र इस स्थानके अधिपति हैं। वह प्रधान लोग उक्त अष्टपुरीको ही देव-द्रोही दुष्टगणके हाथसे रक्षा करते और शिवभक्त व्यक्तिको वर प्रदान करते हैं। इन्होंने भी वाराणसी नगरीमें जाकर शुभप्रद "ईशानेश्वर" महालिङ्ग स्थापन करके तपस्या की थी। ईशानेश लिङ्गके प्रसादसे ईशानदिक्स्थित, एकादश दिक्पति ही सहचर और सभी जटामुकुटमण्डित, ललाटलोचन, नीलकण्ठ, शुभ्रदेह और वृषध्वज हैं। पृथिवीमें जो असंख्य सहस्र सहस्र रुद्र हैं, वह सर्व्वभोग समृद्धि प्राप्त होकर इस ईशानीपुरीमें वास करते हैं। काशीमें ईशानेश्वरके देखनेपर जिसकी मृत्यु, देशान्तरमें भी हो, तो वह हितप्राप्त व्यक्ति इस ईशानीपुरीमें शरीर परिग्रह करते हैं। जो अष्टमी और चतुर्द्दशीको ईशानेश लिङ्गकी पूजा करते हैं, इह-पर-लोकमें निःसन्देह वही रुद्र हैं। ईशाने-श्वरके सकाशसे जो कोई चतुर्द्दशीको उपवास और रात्रिजागरण करेंगे, वह फिर गर्भमें वास नहीं करेंगे। शिव-शर्म्मा स्वर्गपथमें इस प्रकार कही हुई विष्णुगणकी बात सुनते सुनते सब इन्द्रिय और हृदयकी बड़ प्रीतिविधायिनी यथेष्ठ इन्दु-कौमुदी दिवसमें भी देख सके। अत्यन्त आश्चर्य्यमें आकर शिवशर्म्माने पूछा, विष्णुगणद्वय! यह कौन लोक है? विष्णुके दोनो गणने उन ब्राह्मणसे कहा, हे महा-भाग शिवशर्म्मन! जिनके अमृतवर्षी किरण-जालसे जगत् आप्यायित है; उन्हीं कला-निधिका यह लोक है। पूर्व्वकालमें प्रजा-सर्गविधित्सु ब्रह्माके मनसे चन्द्रपिता भगवान अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए। इनने

सुना है, उन्होंने अत्रिने पूर्व्वमें दिव्य परिमाणसे तीन सहस्र वर्षतक उत्कृष्ट तपस्या की है। तब अत्रिके ऊर्द्धगत रेतः चन्द्ररूपमें परिणत होकर दिङ्मण्डल उद्योतित करते हुए उनके नयनयुगलसे दशधा रचित हुआ। ब्रह्माके आदेशसे दश दिग् देवीने मिलकर उस रेतःको गर्भमें धारण किया, किन्तु किसी तरह रख न सकीं। दिग्देवीगण जब उस गर्भधारणमें असमर्थ हुईं, तब चन्द्र उनके साथ भूमिमें निपतित हुए। लोकपितामह ब्रह्माने, चन्द्रको पतित देखकर त्रिलोकहिताभिलाषसे उन्हें रथमें आरोहण कराया। ब्रह्माने उस प्रधान रथसे एकविंशतिबार सागरसीमाका प्रदक्षिण कराया। चन्द्रका जो तेज पृथिवीमें पतित हुआ था, जगतपालिनी औषधि सब उसीसे उत्पन्न हुईं। हे महाभाग! ब्रह्मवर्द्धित स्वयं भगवान चन्द्र, तेजःप्राप्त होकर परमपावन अविमुक्त क्षेत्रमें अवस्थान और स्वनामानुसार चन्द्रेश्वर नामसे अमृतलिङ्ग स्थापनपूर्व्वक शत पद्म वर्षतक तपस्या करते रहे। देवदेव पिनाकी विश्वेश्वरके प्रसादसे बीज, औषधि, जल और ब्राह्मणोंके राजा हुए। तपस्या करनेके समय चन्द्रने, उस अविमुक्त क्षेत्रमें, अमृतोद नामसे एक कूप प्रस्तुत कराया था। उस कूपका जलपान और उससे स्नान करनेसे मनुष्य अज्ञानमुक्त होता है। स्वयं देवदेवने परितुष्ट होकर जगत्सञ्जीविनी उसकी एक परम कला ग्रहण करके उसी कलामात्र कलानिधिको मस्तकमें धारण किया था। चन्द्र पश्चात्प्राप्त दक्षके शापसे मासान्तमें क्षयप्राप्त होकर भी फिर उसी शिवशिरोभूत कला द्वारा आप्यायित होते हैं। सोमयजिप्रवर सोमने, उक्त प्रकारसे महाराज्य प्राप्त होकर शतसहस्र दक्षिणायुत राजसूय यज्ञ किया। हमने सुना है, चन्द्र ब्रह्मा ऋषिप्रवर और सदस्योंको त्रैलोक्य दक्षिणामें दिया। उस यज्ञमें ब्रह्मा ब्रह्मा, अत्रि, भृगु, मरीचि प्रभृति ऋषि ऋत्विक, मुनिमण्डली-परिवृत हरि सदस्य हुए। सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्त्ति, धृति और शोभा यह नौ देवी चन्द्रकी सेवा करती थीं। चन्द्र, उमाके साथ रुद्रको यज्ञकार्य्य द्वारा परितृप्त करनेसे उमासह शिवके प्रदत्त "सोम" नामको प्राप्त हुए। सोमने, चन्द्रेश्वर शिव लिङ्गके समीप काशीमें ही परम दुष्कर परम तपस्या की और राजसूय यज्ञ किया। वहीं ब्राह्मणोंने कल्पनिधिको कहा, कि तुम त्रैलोक्य दक्षिणादाता सोम, हम ब्राह्मणोंके राजा तुम्हीं हो। काशीमें ही देवदेव चन्द्रके नयनगोचर हुए। उनके तपस्याबलसे प्रसन्नचित्त शिवने, त्रैलोक्यके आह्लादनकी हेतु चन्द्रसे कहा, तुम हमारे अन्यतम परमूर्त्ति हो। जगत् तुम्हारे उदयसे सुखी होगा। सूर्य्यतापपरिक्लिष्ट यह

सचराचर जगत् तुम्हारे अमृतमय किरण-जालके स्पर्शसे परम ग्लानिसे विमुक्त होगा। महेश यह कहकर सहर्ष और सब वर प्रदान करने लगे। उन्होंने कहा, द्विज-राज! तुमने इस काशीमें जो अत्युग्र तपस्या की है, यह जो यज्ञफल समस्त मुझमें अर्पण किया है, यह जो चन्द्रेश्वर नामक मेरा लिङ्ग स्थापित किया है, इन सब कारणोंसे अर्द्धचन्द्रधारी उमासहचर त्रिलोकेश्वर मैं, सर्व्वव्यापी होनेपर भी तुम्हारे नामानुसारी इस लिङ्गमें प्रतिमास प्रति पूर्णिमाको अहोरात्र विशेषरूपसे अधिष्ठित होऊंगा। अतएव पूर्णिमा तिथिको इस जगह जप, होम, पूजा, ध्यान, दान और ब्राह्मणभोजन जो कुछ सत्कार्य्य है, अल्प करनेसे भी, वह हमारी प्रीतिकरी महा-पूजा होगी। जीर्णसंस्कारादि करना नाच बाजा प्रभृति ध्वजारोपणादि कर्म्म और तपस्वियों और यतियोंका तृप्तिसाधन, यह सब कर्म्म चन्द्रेश्वरमें कृत होनेसे अनन्त-फलजनक होता है। कलानिधि! और भी कुछ गोपनीय बात कहता हूं, सुनो। अभक्त, नास्तिक और वेद द्रोहीको यह कथा वक्तव्य नहीं है। हे सोम! सोम-वारको जब अमावस्या हो, तब साधुगण आदरपूर्व्वक चतुर्द्दशीका उपवास करें। सोम! सुनो; त्रयोदशीको नित्यकर्म्म समाधा करके उस त्रयोदशी शनिवारको प्रदोषकालमें इन चन्द्रेश्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे नक्त (रात्रि मात्रका आहार) करके नियमग्रहणपूर्व्वक चतुर्द्दशीको उप-वास और रात्रि जागरण करें। फिर सोमवारको अमावस्याके प्रातःकाल चन्द्र-कूपजलसे स्नान और जलका कर्त्तव्य तर्प-णादि सकल कार्य्य करके यथाविधि सन्ध्या उपासनापुरःसर चन्द्रकूपके समीपवर्त्ती तीर्थमें यथाविधि श्राद्ध करें। इस श्राद्धमें अर्घ्य दान और आवाहन नहीं है। श्राद्धकर्त्ता वायु, रुद्र और आदित्यरूपी पित्रादि पुरु-षत्रय और मातामहादिकोंको उद्देश करके प्रयत्न सहकारसे पिण्डदान करें। इस तीर्थमें अन्यान्य सगोत्र, गुरु, श्वशुर और बन्धुबान्धवका नामोच्चारणपूर्व्वक श्रद्धासह-कारसे श्राद्धमें पिण्डदान करनेसे सबका उद्धार होगा। गयामें पिण्डदान करनेसे पूर्व्वपुरुषगण जैसे परितुष्ट होते हैं; इस चन्द्रकूपके निकट श्राद्ध करनेसे भी पूर्व्व-पुरुषगण उसी प्रकार तृप्त होते हैं। मनुष्य जैसे गयामें पिण्डदान करके समग्र पितृऋणसे मुक्त होता है; चन्द्रकूपमें पिण्ड दान करनेपर भी पितृऋणसे उसी प्रकार मुक्तिलाभ करता है। कोई उत्तम नर जब चन्द्रेश्वर शिवलिङ्ग दर्शन करनेके लिये जाते हैं, तब उनके पूर्व्वपुरुषगण, हृष्ट हो यह कहकर नृत्य किया करते हैं, कि "यह व्यक्ति, चन्द्रकूप तीर्थमें हमलोगोंका तर्पण करेगा, हम-लोगोंके दुर्भाग्यसे यदि तर्पण न भी करे,

तब भी वह तीर्थजल तो स्पर्श करेगा, उसीसे हमारी तृप्ति होगी। मूढ़तासे यदि जलस्पर्श भी न करे, देखेगा तो, उससे भी हमारी तृप्ति है।" व्रती मनुष्य, पूर्व्वोक्त प्रकारसे श्राद्ध करके चन्द्रेश्वर दर्शनपूर्व्वक ब्राह्मणगण और यतिगणका भोजनादि द्वारा तृप्ति साधन होनेपर पारण करें। हे शशाङ्क! काशीमें अमावस्यायुक्तसोमवारको इस प्रकार व्रत करनेसे, हमारे अनुग्रहसे वह देवगण पितृगणऔर ऋषिगणसे मुक्ति लाभ करता है। चित्रा-नक्षत्रयुक्ता चैत्रीपूर्णिमाको काशीनिवासिगण तारकज्ञान लाभके लिये इस तीर्थकी यात्रा करें। इस यात्राके फलसे काशीवासका विघ्न विनष्ट होता है। यदि कोई चन्द्रेश्वर लिङ्ग अवलोकन करनेके बाद, अन्यत्र मरे, तो वह व्यक्ति भी पापराशि भेद करके चन्द्र-लोकको प्राप्त होगा। कलिकालमें भाग्य-हीन व्यक्ति चन्द्रेश्वर लिङ्गकी महिमा जान नहीं सकता। हे निशापते! परम गुह्य दूसरी बात भी तुमसे कहता हूं। यह पीठ, सिद्धियोगीश्वर और साधकोंका सिद्धिप्रद है। सुरासुर, गन्धर्व्व, नाग, विद्याधर, राक्षस, गुह्यक, यक्ष, नर, किन्नरगणमें सप्त कोटि सिद्ध, हमारे सामने ही यहां सिद्ध हुए हैं। छः महीने संयताहारसे विश्वेश्वरी ध्यान करनेपर, चन्द्रेश्वर लिङ्गपूजनके लिये समागत सिद्धगणको सामने देख पायेंगे। साक्षात् सिद्धयोगीश्वरी, उसे वरदान करती हैं; सिद्धयोगीश्वरीके दर्शन होंसे तुम्हें भी महासिद्धि लाभ हुई। साधक-सिद्धिप्रद कितने ही पीठ भूतलमें हैं, किन्तु इस सिद्धेश्वरीपीठकी अपेक्षा आशुसिद्धिप्रद पीठ और नहीं है। हे शशिन्! तुमने जिस स्थानमें चन्द्रेश्वर लिङ्गकी प्रतिष्ठा की है, यही उन अजितेन्द्रियगणका अदृश्य पीठ है। जितकाम, जितक्रोध, जितलोभ, जितस्पृह व्यक्तिगण ही हमारी उन परमाशक्ति योगीश्वरीका दर्शन पाते हैं। जो सब व्यक्ति प्रति अष्टमी और प्रति चतुर्द्दशी तिथिको अदृष्टरूपा, सुभगा, सर्व्वसिद्धिदायिनी पिङ्गला देवीको धूप-दीप-नैवेद्यादि द्वारा भक्तिभावसे पूजा करेंगी, वह देवी उनके समक्ष आविर्भूता होंगी। हे द्विज! शिव, उस विश्वेश्वर नगरमें चन्द्रको यह सब वर देकर उसी जगह अन्तर्हित हुए। तबसे द्विजराज चन्द्र, अपने प्रसरणशील करनिकर द्वारा दिङ्मण्डलको अन्धकार-शून्य करते हुए लोकमें आधिपत्य करते हैं। सोमवार-व्रतकर्त्ता और सोमपाननिरत मनुष्य चन्द्रप्रभ यानमें गमनपूर्व्वक इस चन्द्रलोकमें वास करते हैं। जो मनुष्य, चन्द्रकी उत्पत्ति और तपस्या प्रकरण भक्तिभावसे श्रवण करते हैं, वह चन्द्रलोकमें पूजित होते हैं। अगस्त्यने कहा, कि विष्णुपारिषद् द्वय स्वर्गपथमें शिवशर्म्मासे

यह श्रमहारिणी सुखदायिनी बात कहते कहते वहांसे नक्षत्रलोक पहुंचे ।

चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

नक्षत्रलोक, बुधलोक और वृत्तान्त ।

हे महाभागी ! सहधर्म्मिणि ! पति ! लोपामुद्रे ? विष्णुपारिषद्दयने, शिवशर्मासे जो कथा वर्णन की थी, उसे श्रवण करो । शिवशर्म्माने कहा, हे विष्णु पारिषद्द्वय ? महा चन्द्रके विषयकी क्या ही अद्भुत कथा सुनी । हे निखिलवृत्तान्त ज्ञानी ! नक्षत्रलोककी कथा कहिये । विष्णुपारिषद्द्वय बोले, प्राचीन समयमें प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाले सृष्टिकर्त्ताके अंगुष्ठके पृष्ठसे प्रजासृष्टिमें दक्ष, दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। उन्हीं दक्षकी तपोलावण्यभूषणा ब्रह्माण्डलावण्यसम्पन्ना रोहिणीप्रमुख साठ दुहिताउत्पन्न हुईं । वह सब विश्वेश्वरनगरीमें आकर बड़ी कठिन तपस्यापूर्व्वक उमा समभिव्याहारी महादेवकी आराधना करने लगीं । महादेवजी जब सन्तुष्ट हुए, तब वर देनेके हेतु आये । प्रसन्नचित्तसे कहने लगे, श्रेष्ठ वर मांगो । तदनन्तर वह कुमारियां शिववाक्य श्रवण करके कहने लगीं, हे शङ्कर यदि हमलोगोंको वर प्रदान करना चाहते हो, और यदि हमलोग वर पाने योग्य हों, तो हे महादेव ! हमलोगोंको यही वरदान कीजिये, कि भवतापहारी आपके सदृश कोई पुरुष हमलोगोंके स्वामी हों । दक्षकन्यागणने वरुणा नदीके मनोहर तटपर सङ्गमेश्वर शिवके समीप नक्षत्रेश्वर नामका बड़ा लिङ्ग स्थापन करके, देवताओंके सहस्र वर्षतक, पुरुषोंके लिये भी कठिन, पुरुषायत नामकी बड़ी भारी तपस्या की थी । तत्पश्चात् विश्वेश्वर सन्तुष्ट होकर उन एकहीके प्रति निविष्टचित्ता एकपत्नी सब दक्षकन्याओंसे बोले, कि प्राचीन समयमें और कोई रमणी इस तरहकी अत्युग्र तपस्या कर नहीं सकी, इसलिये इस समय तुम्हारा नाम नक्षत्र हुआ । इस समय तुम लोगोंने पुरुषायित नामकी तपस्या की है इसलिये तुम इच्छानुसार पुरुष हो सकती हो । इन सब ज्योतिश्चक्रमें तुम लोग प्रथम मानी जाओगी और तुम लोग मेषादि राशिकी उत्तम उत्पत्तिका स्थान होगी । हे शुभमुखीगण ! जो औषधिके स्वामी, अमृतके स्वामी, ब्राह्मणोंके स्वामी हैं, वही आप लोगोंके स्वामी होंगे । तुम्हारे स्थापित इन नक्षत्रेश्वर नामके लिङ्गकी जो पूजा करेगा, वह मनुष्य तुम्हारे उत्तम लोकको गमन करेगा । चन्द्रलोकके ऊपर तुम्हारा निवासस्थान होगा । और सम्पूर्ण तारागणमें तुम लोग श्रेष्ट समझी [illegible]गी । जो नक्षत्र-

पूजक हैं, जो नक्षत्रानुसारि-व्रत्त अनुष्ठान करते हैं। वह नक्षत्रोंके समान प्रभासम्पन्न होकर तुम्हारे लोकमें वास करेंगे। काशीमें जो नक्षत्रेश्वर शिवका दर्शन करते हैं, उनको कभी नक्षत्रपीड़ा, ग्रहपीड़ा, राशिपीड़ा, नहीं होती। अगस्त्य बोले, विष्णुमें मग्न-चित्त विष्णुपारिषदद्दय नक्षत्रलोकको सत्कथा कीर्त्तन करते ही थे, कि शिव-शर्म्माको उसी समय बुधलोक दृष्टिगोचर हुआ। शिवशर्म्मा बोले, हे श्रीभगवत्-पारिषदद्दय! यह अनुपम लोक किसका है? यह लोक, चन्द्रलोकको सदृश, हमारे हृदयको अत्यन्त तृप्त करता है। विष्णुगणद्दय बोले, शिवशर्म्मन्! यह स्वर्गपथमें विनोदन करनेवाली, पापों-को हरण करनेवाली, त्रयताप नाश करनेवाली कथा श्रवण करो। हम-लोगोंने जिन साम्राज्यपदप्राप्त, महाकान्ति-वान्, द्विजराजकी कथा कुछ पहले तुमसे कही थी, जिन्होंने राजसूय यज्ञमें त्रिभुवन दक्षिणामें दिया था, जिन्होंने सो पद्मवर्ष अत्युग्र तपस्या की थी, जो अत्रिजीके नेत्रसे उत्पन्न और साक्षात् ब्रह्माके पौत्र हैं, जो ब्रह्माण्डकी औषधिके नाथ हैं, जो नक्षत्रादि ज्योतिके अधिपति हैं, जो निर्म्मल कलाके निधिके ना-मसे कीर्त्तित हैं, जो उदय होकर दूसरेके तापको अपने कर कमलसे अर्द्धचन्द्र देकर दूर करते हैं, जो उदय होते ही कुमुदिनी-कुल और जगतके आनन्दका विधान करते हैं, जो दिगङ्गनागणका वेष-भूषा शृंगार देखनेके लिये सुन्दर दर्पण स्वरूप हैं;—बहुत गुणावलीसे क्या काम?—सर्व्वज्ञ शिवजी जिनकी एक कला मस्तकपर धारण किये हैं, सिर्फ इतने होसे जिनका सादृश्य जगतमें नहीं है; उन्हीं रूपवान चन्द्रने, ऐश्वर्य्यमदसे मुग्ध होकर गुरू, पुरोहित, पितृव्यपुत्र आङ्गिरस,वृहस्पतिकी भार्य्या रूपशालिनी ताराको देवगण और देवर्षिगण द्वारा कई बार निवारित होनेपर भी बलपूर्व्वक हरण किया। कला-निधिके द्विजराज होनेपर भी यह दोष उनका नहीं। एक त्रिलोचन व्यतीत कामने किसके चित्तको विकृत नहीं किया? विशेषतः इस चारो ओर फैले हुए तम (अन्धकार)के विनाश करनेके लिये विधाताने, दीप और सूर्य्यकिरणादि रूप महौषधि निर्माण की हैं; किन्तु आधिपत्यतमोविनाश करनेके लिये कोई भी औषधि नहीं बनाई। क्यों-कि जो मनुष्य आधिपत्यमदसमोहित हैं, उसे कोई हितवार्त्ता, यहांतक, कि हितकारक हरिकथा भी छू नहीं जाती। जैसे विरुद्धचित्त दुर्जन लोगके तीर्थस्नान करनेपर भी निर्मल बुद्धि उन्हें स्पर्श नहीं करती; यह भी उसी तरह है। जिसके प्रभावसे म.नो विपदकी पदाघात प्राप्ति वशतः सकुञ्चितभावापन्न नयनकी कुटिलगामिनी दृष्टि द्वारा एक तरहका

विलक्षण भाव क्षण कालमात्रमें अवलोकन करना पड़ता है, उस अधिक सम्पत्तिकी चेष्टाको धिक् धिक्! कामने, पुण्याशुभ होनेपर भी त्रिलोकमें किसकी जय नहीं किया है? क्रोधके वशतापन्न कौन नहीं हुआ? लोभने किसको लुब्ध नहीं किया? कामिनीके नयनरूपी भल्लास्त्रसे विदीर्ण हृदय होकर कौन विपत्तापन्न नहीं हुआ है? और कौन मनुष्य राज्य-लक्ष्मी पाकर चक्षु रहनेपर भी अन्धा नहीं होता है? अधिपत्यलक्ष्मी अति चञ्चला हैं, उसे लाभ करके इस जगतमें सत् असत् जोही उपार्ज्जन करे, वही अवश्य फलप्रद होगा; अतएव जो अतीव हितकर है, सच्च-रित्र व्यक्तिगण सदैव, वही करेंगी। जब चन्द्रने उन्नत होकर वृहस्पतिको तारा अर्पण न की, तब रुद्र पिनाक ग्रहणपूर्व्वक वृहस्पतिके पृष्ठपोषक हुए। तब महाबल चन्द्रने, ब्रह्मशिरोनामक अस्त्र देवादिदेव-पर निक्षेप किया, देवदेवने उस अस्त्रको नष्ट किया। उन लोगोंका परस्पर घोर-तर "तारकामय" युद्ध होने लगा। इससे विधाता असमयमें ब्रह्माण्डनाशके भयसे भीत हुए। तब स्वयं पितामहने, प्रलयानल-तुल्य, रुद्रको युद्धसे निवृत्त करके वृहस्पत्ति-की तारा प्रत्यर्पण की। अनन्तर, वृह-स्पतिने, ताराको फिर गर्भवती देखकर तारासे कहा, "हमारे क्षेत्रमें तुम कदापि परकीय गर्भ धारण कर न सकोगी।" तब ताराने ईषिकास्तम्बमें गर्भ त्याग किया। उन भगवानके जन्ममात्रसे, देवगणका शरीर उनके तेजसे निष्प्रभ हुआ। तब सुरश्रेष्ठगण, संशया-पन्न होकर तारासे पूछने लगी, "सत्य कहो, यह पुत्र चन्द्रका, व वृहस्प-तिका है?" देवगण कर्त्तृक जिज्ञासिता होनेपर तारा अति लज्जासे उस समय जब कुछ भी बोल न सकीं, तब अतितेजाः कुमार उनको अभिशाप देनेमें प्रवृत्त हुए। ब्रह्माने कुमारको निवृत्त करके तारासे वही संशयस्थल पूछा, ताराने हाथ जोड़कर पितामहसे कहा, "चन्द्रका।" तब प्रजापतिने तारागर्भोद्भव उन बुद्धिमान बालकका मस्तकाघ्राण करके उनका नाम "बुध" रखा। अनन्तर सम्पूर्ण देवताओंकी अपेक्षा अधिक तेजोबल-रूप-सम्पन्न बुध तपस्यामें कृतनिश्चय होकर चन्द्रसे अनुमति ग्रहणपूर्व्वक विश्वेश्वर-पालिता निर्व्वाणराशि काशी गये। बालक बुधने स्वीय नामानुसार बुधेश्वरलिङ्ग प्रतिष्ठा करके हृदयमें नवशशिशेखर शिवप्रद महादेवका ध्यान करते हुए अयुत वर्ष तक अत्युग्र तपस्या की। अनन्तर विश्व-भावन, विश्वरक्षक महोदय श्रीमान् विश्व-नाथ महालिङ्ग बुधेश्वरसे आविर्भूत हुए। और वह ज्योतिरूप महेश्वर प्रसन्न-चित्तसे बोले, हे महाबुद्धे! अन्य देवोत्तम बुध! वर प्रार्थना करो। हे महा-

सौम्य! तुम्हारी इस तपस्या और लिङ्ग-सेवासे मैं प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हें अदेय मेरे कुछ भी नहीं। बालक बुधने अनावृष्टिपरिम्लान शस्यराजिके सञ्जीवनसलिल तुल्य, मेघनिर्घोषगम्भीर यह वाक्य श्रवण करके ज्यों ही नयनद्वय उन्मीलनपूर्व्वक सम्मुख देखा, उसी समय उसी लिङ्गमें शशिशेखर त्रिलोचनको देखा। तब बुध बोले हे पूतात्मन्! आपको नमस्कार; ज्योतीरूप आपको नमस्कार; हे विश्वरूप! आपको नमस्कार; हे रूपातीत! आपको नमस्कार; हे प्रणतजनगणके सर्व्ववाधाविनाशन! सर्व्वेश शिवात्मन्! आपको नमस्कार; हे सर्व्वकारक! आपको नमस्कार; हे दयालो! आपको नमस्कार; हे भक्तिगम्य! आपको नमस्कार; हे तपःफलदायक! हे तपोरूप! आपको नमस्कार; हे शम्भो! हे शिव! हे शिवाकान्त! हे शान्त! हे श्रीकण्ठ! हे शूलभृत्! हे शशिशेखर! हे शर्व्व! हे ईश! हे शङ्कर! हे ईश्वर! हे धुर्जटे! हे पिनाकपाणे! हे गिरीश! हे शितिकण्ठ! हे सदाशिव! हे महादेव! आपको नमस्कार; हे देवदेव! आपको नमस्कार; हे स्तुतिप्रिय! मैं स्तव करना नहीं जानता! हे महेश्वर! आपके चरण-कमल-युगलमें, मानो हमारी निष्पृत्युह और असाधारण भक्ति रहे। हे नाथ! हे ईश्वर! हे करुणामृतसागर! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो यही वर दीजिये। आपके समीप अन्य वर प्रार्थना नहीं करता। तदनन्तर महादेव, बुधके स्तवसे परितुष्ट होकर बोले, रौहिणेय! हे महाभाग हे सौम्यवचोनिधि सौम्य! नक्षत्रलोकके ऊपर तुम्हारा लोक होगा और सब ग्रहोंमें तुम परम पूजाको प्राप्त होगे। हे सौम्य! तुम्हारा स्थापित यह लिङ्ग सम्पूर्ण जनका बुद्धिसम्पादक, दुर्बुद्धिविनाशक और त्वदीय लोकभोगप्रद हो! भगवान् शम्भु यह बात कहकर उसी स्थानमें अन्तर्द्धान हो गए। बुध देवदेवकी प्रसन्नतासे स्वर्गलोक गये; विष्णुपारिषदद्वय बोले, काशीमें बुधेश्वर शिवकी पूजासे ज्ञानप्राप्त मनुष्य, अगाध-संसार सागरमें निपतित होकर भी निमग्न नहीं होता; साधुजननयन-कौमुदीस्वरूप वही व्यक्ति कमनीयवदन होकर इस बुधलोकमें वास करते हैं। चन्द्रेश्वर शिवके पूर्व्वभागमें स्थापित बुधेश्वर लिङ्ग अवलोकन करनेसे मनुष्य कभी, ऐसा, कि मृत्युकालमें भी बुद्धिहीन नहीं होता। विष्णुपारिषद्द्वयकी बुधलोककी इसी बातचीतमें उनका विमान अत्युत्कृष्ट शुक्रलोकमें उपस्थित हुआ।

पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

षोड़श अध्याय।

शुक्रलोक, शुक्रवृत्तान्त।

विष्णुपारिषद्द्वयने कहा, महाबुद्धे! शिवशर्मन्! यह अद्भुत शुक्रलोक है; दैत्य-दानवोंके गुरु वह कवि इसी स्थानमें बास करते हैं; जिन्होंने दुःसह तुषधूम सहस्र वर्ष सेवन करके महादेवसे मृतसञ्जीवनी महाविद्याको प्राप्त किया है। यह अति दुष्कर विद्या सुरगुरु बृहस्पति भी नहीं जानते। शिव, कार्त्तिकेय, पार्व्वती और गजाननके अतिरिक्त यह विद्या और कोई नहीं जानता। शिवशर्म्माने कहा, जिनका यह उत्तम लोक, शुक्र नामसे विख्यात है, वह कौन हैं? उन्होंने किस प्रकार महादेवके पाससे मृतसञ्जीवनी विद्याको प्राप्त किया? हे प्रभु देवद्वय! हमारे प्रति यदि प्रसन्न हैं, तो यह विवरण आप कीर्त्तन करिये! फिर देवता विष्णुके दोनो दूत शुक्रकी परम कथा कहने लगे। श्रद्धासहित इस कथाके श्रवण करनेसे, अपघात मृत्यु नहीं होती, भूत प्रेत पिशाचसे भी भय नहीं रहता। अन्धक और अन्धकारि युद्धमें प्रवृत्त हुए हैं। दोनों अभेद्य गिरिव्यूह और अभेद्य वज्रव्यूह हैं। अन्धकने एकबार युद्धसे अपसृत होकर शुक्रसमीप गमनकर रथसे उतर शुक्रसे यह बात कही, भगवन्! मैं आपका आश्रय करके रुद्रोपेन्द्र प्रभृति सासुवर देवगणको तृणतुल्य बोध करता हूं। गुरो! कुञ्जरगण जैसे सिंहसे भीत होते हैं और सर्पगण जैसे गरुड़से भीत होते हैं, उसी प्रकार देवता भी हमारे निकट भय पाते हैं। तापार्द्दित व्यक्तिगण जैसे ह्रदमें प्रविष्ट होते हैं, दैत्य-दानवगण उसी प्रकार प्रमथ सैन्य निकम्पित करके अभेद्य वज्रव्यूहमें प्रविष्ट हुए हैं। हे ब्रह्मन्! इस क्षण मैं आपका रक्षित होकर इन्द्रके साथ महायुद्धमे पर्व्वतवत् अचल अटल भावसे विचरण कर सकता हूं। आपके सुखप्रद दोनो चरणको मैं पुत्र कलत्रके साथ विश्रब्ध-स्वभावसे दिनरात शुश्रुषा करूंगा। हे विप्र! प्रसन्न होकर इन शरणागत व्यक्तियोंकी सर्व्वतोभावसे रक्षा करिये। देखिये, हुण्ड, तुहुण्ड, कुजम्भ, जम्भ, पाक, विपाक, पाकहारी, कार्त्तस्वन, वीर चन्द्रदमन और वीर अमरविदारण इन लोगोंपर मृत्युजेता भीमविक्रम प्रमथगण आक्रमण करके, द्राविड़जातिगण जैसे चन्दनको पातित और सूदित करते हैं, उसी प्रकार निपातित और विनष्ट करते हैं। आप पूर्व्वकालमें तुषधूम सेवन करके जिस उत्कृष्ट विद्याको प्राप्त हुए हैं, उसके प्रकाश करनेका यही समय उपस्थित है। आज सभी प्रथमगण दैत्यगणको पुनरुज्जीवनदानतत्पर आपकी विद्याबल और अपने पुनर्ज्जीवित दैत्यगणको अवलोकन करें। स्थिरबुद्धि भार्गव मुनि, दानवराज अन्धककी यह बात सुनकर ईषत्

हास्य करके उससे बोले, हे दानवराज! तुमने जो कहा, वह सब सत्य है और मैंने इस विद्याका उपार्ज्जन भी दानवोंके लिये ही किया है। मैंने अतीव दुःसह तुषधूम सहस्र वर्ष सेवन करके बान्धवगणकी सुखावहा इस विद्याको शिवके निकटसे प्राप्त किया है। मैं, समरमें प्रमथगण कर्त्तृक निहत असुरोंको, म्लान धान्यगुच्छसमूहको मेघ जैसे सतेज करता है, उसी प्रकार इस विद्याके प्रभावसे उत्थापित करूंगा। राजन्! इस मुहूर्त्तमें ही उन मृत दानवोंको निर्व्रण व्यथाहीन, सुस्थ और जैसे सुप्तोत्थित देखोगे। कवि शुक्र, दानवराजसे यह बात कहकर एक एक दैत्यको उद्देश करके वह मन्त्र पाठ करने लगे; सम्प्रदायनाशसे विच्छिन्नप्रायः वेद जिस तरह सज्जनगण कर्तृक अभ्यस्त होकर पुनः प्रचरित होता है; पूर्व्वविलुप्त मेघमाला जिस तरह वर्षाकालमें फिर उदित होती है और श्रद्धासहकारसे ब्राह्मणप्रदत्त अर्थ जैसे महाविपत्तिकालमें, दातृगणके फलदानार्थ उत्थित होता है, उसी प्रकार तत्क्षणात् अस्त्र धारण करते हुए उत्थित होने लगे। तुहुण्ड प्रभृति महासुरगणको पुनर्ज्जीवित देखकर असुरगण, जलपूर्ण जलधरकी तरह ध्वनि करने लगे। प्रमथश्रेष्ठगण, उन दानवोंको शुक्रद्वारा पुनर्ज्जीवित देखकर परस्पर बातचीत करने लगे, कि यह बात देवदेवके निकट निवेदन करना होगी। वहां प्रमथश्रेष्ठोंका अतीव अद्भुत युद्धयत्न होनेपर, शिलादतनय नन्दी, भार्गवकर्म्मदर्शनसे क्रुद्ध होकर महेश्वरके पास उपस्थित हुए। फिर वह उन जयहेतु धुस्तूर-गौरवर्ण महादेवसे "जय जय" शब्द उच्चारण करते हुए बोले, हे देव! इन्द्रादि देवगणके भी दुष्कर जो युद्धकार्य्य हम सब गणनायक करते हैं, उसको भार्गवने विफल किया है। प्रत्येकको उद्देश करके मृतसञ्जीवनी विद्या आवृत्ति करके एक एक जन समर-निहत विपक्षगणको पुनर्ज्जीवित करते हैं। तुहुण्ड, हुण्ड, कुजम्भ, जम्भ, विपाक और पाक प्रभृति महासुरश्रेष्ठगण यमालयसे प्रत्यागत होकर प्रमथगणको विद्रावित करते विचरण कर रहे हैं! यह भार्गव, यदि निहत दैत्यगणको पुनः पुनः उज्जीवित करेंगे, तो हे महेश! हमारी जय किस रूपसे होगी? सुतरां गणनायकोंकी सुख-शान्ति ही किस प्रकार होगी? प्रमथश्रेष्ठ नन्दीके यह बात कहनेपर, प्रमथाधिपनायक महेश्वरने उन सर्व्वगणप्रवराध्यक्ष नन्दीसे हंसते हुए कहा "नन्दिन्! अति शीघ्र गमन करो; बाज जैसे लवापक्षीको धर लेता है, उसी प्रकार दैत्यगणके मध्यसे उन ब्राह्मणश्रेष्ठको शीघ्र धर लाओ।" महादेवके यह बात कहते ही, उन वृषसिंहनादी नन्दीने सिंहनाद किया। फिर नन्दीने, जहां भृगुवंशदीप शुक्र अवस्थित थे, सैन्य चीरते हुए वहां शीघ्र गमन किया।

सब दैत्यगण पाश, खड़्ग, वृच, प्रस्तर और पर्व्वत हाथमें लेकर जिनकी रचा कर रहे हैं, उन्हीं शुक्रको शरभ जैसे हाथीको हरण करता है, उसी प्रकार, बलवान् नन्दीने असुरगणको विचोभित करते हुए हरण किया। उन स्खलितवस्त्र, मुक्तकेश, विच्युतभूषण, महाबलनन्दी द्वारा परिगृहीत शुक्रको विमुक्त करनेके लिये ही असुरगण सिंहनाद करते हुए नन्दीके पीछे दौड़ने लगे। तब दानवेन्द्रगण जलदजालकी तरह नन्दीश्वरके ऊपर वज्र, शूल, खड़्ग, कुठार, बहुतरचक्र, प्रस्तर और कम्पनास्त्र तीव्रवेगसे वर्षण करने लगे। गणाधिराज नन्दी, प्रवृद्ध देवासुरयुद्धमें अरि-सैन्यगणको व्यथा देकर मुखानलद्वारा शत शत अस्त्र दग्ध करते भार्गवको ग्रहण किये शिवके पास उपस्थित हुए और शीघ्र महादेवसे निवेदन किया, "भगवन्! यही वह शुक्र हैं।" तब देवदेवने, पवित्र व्यक्ति प्रदत्त उपहारकी भांति उन शुक्रको ग्रहण किया। उन भूतपतिने और कुछ न बोलकर कविश्रेष्ठ शुक्रको फलवत् मुखमें निक्षेप किया। तब समस्त असुरगण ऊंचे स्वरसे अनवरत हाहाकार करने लगे। गिरजापतिके शुक्रको निगल जानेपर, दैत्यगणने जयाशा परित्याग की। तब जैसे शुण्डहीन करीन्द्र, शृङ्गहीन वृषेन्द्र, शरीरहीन जीवसमूह, अध्ययनहीन द्विज, उद्यमहीन प्राणिगण, भाग्यसम्बन्धहीन उद्योग, पतिहीन रमणी, पचहीन शरजाल, पुण्यहीन आयु, जैसे असच्चरित्र व्यक्तिका शास्त्र पढ़ना और एक शिवभक्तिहीन व्यक्तिका क्रियाकलाप निष्फल होता है, उसी प्रकार दैत्यगणने, उन द्विजश्रेष्ठविरहित होकर जयकी आशा परित्याग की। शुक्रके, नन्दी द्वारा अपहृत और हलाहल-पायी महादेव द्वारा गिलित होनेपर, रणोत्साहहीन असुरगण विषाद प्राप्त हुए। उन लोगोंको निरुत्साह देखकर अन्धकने कहा, नन्दीने विक्रम प्रकाशपूर्व्वक शुक्रको ग्रहणकर हमलोगोंको वञ्चित किया है, नन्दीने आज हमलोगोंका शरीर लय नहीं, प्राण हरण किया है। एक भार्गवको हरण करके, नन्दीने हमलोगोंका धैर्य्य, वीर्य्य, गति, कीर्त्ति, ज्ञान, तेज, पराक्रम यह सब ही युगपत् हरण किया है। जो, हमारे और हमारे कुलपूज्य हैं, भृगुवंशके प्रदीप हैं, सर्व्वसमर्थ, सर्व्वरचक; उन एक मात्र गुरुको भी हम आपदसे परित्राण कर न सके, ऐसे हमलोगोंको धिक् है! सो जो हो, इस समय धैर्य्यावलम्बन करके शत्रुओंके साथ युद्ध करो। हम नन्दी-समन्वित इन सब प्रमथगणको निहत करेंगे। आज इन्द्रप्रमुख देवगणसहित इन प्रमथगणको अवश्यभावसे निहत करके योगी जैसे कर्म्मबन्धनसे जीवको मुक्त करते हैं, उसी प्रकार हम भी भार्गवको शिवोदरमुक्त करेंगे। और

यदि वह योगी प्रभु योगबलसे शिवके शरीरसे स्वयं निर्गत हों, तो शेषमें वह हमारी रक्षा करेंगी। मेघ-गम्भीर-निर्घोष दानवगण, अन्धकको यह बात सुन, मरण कृतनिश्चय करके प्रमथगणको मर्द्दित करने लगे। आयु रहते प्रमथ कुछ बलपूर्व्वक मार नहीं सकेंगे और यदि आयु न रहे, तो स्वामीको युद्धमें परित्याग करके भागनेमें क्या फल है? जो सब व्यक्तियोंके पूर्व्वमें बहुतर मान-धनसम्पन्न रहनेपर भी स्वामीको युद्धमें परित्याग करके भागते हैं, वह निश्चय ही अन्धतामिस्र नरकगह्वरमें जाते हैं। प्रभूततर सुख्यातिको अयशः-स्वरूप अन्धकार द्वारा मिलाकर जो रणाङ्गनसे भाग जाते हैं, वह इहपरकालमें सुखी नहीं होते। यदि पुनर्ज्जन्ममल-विनाशक अस्त्रधारातीर्थमें स्नान किया जाय, तो दान, तपस्या और तीर्थस्नानका प्रयोजन क्या है?" दैत्यदानवगण, परस्पर ऐसा स्थिर करके, समरभेरीसमूह निनादित करते प्रमथगणको रणमें विमर्द्दित करने लगे। वहां प्रमथ और दैत्य-दानवगण परस्पर बाण, खड्ग, बज्रसमूह, कटत्कट शब्दयुक्त शिलामय यन्त्र, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, शक्ति, भल्ल, कुठार, खट्टाङ्ग, शूल, पट्टिश, लकुट और मूषल द्वारा आघात प्रतिघात करते हुए महायुद्ध करने लगे। कार्म्मुकाकर्षणकी ओर शर, भिन्दिपाल और भुशुण्डी पतनकी ओर बहुत सिंहनाद ध्वनि होने लगी। समरतूर्य्य-निनाद, करिकुलके बहु बृंहित शब्द और अश्वकी हिनहिनाहटसे महान् कोलाहल होने लगा। द्यावापृथिवीका अभ्यन्तर प्रतिध्वनिसे परिपूर्ण हुआ। वीरगणको और भीरुको अतीव रोमाञ्च होने लगा। उभय पक्षीय सैन्यके ही गजवाजिगणके महाशब्दसे कान बहरा हुआ, ध्वज पताका भग्न हुई, अस्त्र सब चुक गया, घोड़ा हाथी और रथ पर्य्यन्त रुधिरोद्रेकसे रङ्ग गया; वह सभी प्याससे होकर मूर्च्छापन्न हुए। तब स्वयं अन्धक, सैन्यको प्रमथगण द्वारा इतस्ततः भग्न देखकर रथारोहणकर समरमें धावित हुआ। वह प्रमथगण, वज्राघातसे गिरिसमूहकी तरह और वायुवेगसे निर्ज्जल जलदावलीकी तरह, अन्धकके बज्रतुल्य शर-प्रहारसे विनष्ट हुए। तब अन्धक, गमनपरायण आगमनपरायण, दूरस्थित, निकटस्थित सबको देखकर प्रत्येकको जितने रोमथे उतने ही बाण द्वारा विद्ध करने लगा। गणेश, कार्त्तिकेय, शिवानन्दकर नन्दी, नैगमेय, शाख और बलीयान् विशाख इत्यादि अत्युग्रगणसमूहने त्रिशूल, शक्ति और शरजाल वृष्टिधाराकी तरह निक्षेप करते हुए अन्धकासुरको भी अन्धा कर डाला। फिर प्रमथगण और असुरसैन्यमें महा कोलाहल हुआ; उस शब्दसे शिवोदरस्थित शुक्र बहिर्गमनके छिद्र अन्वेषण

करते हुए आश्रयहीन वायुकी तरह भ्रमण करते करते, उस रुद्रजठरमें सप्तलोक और पातालादि देख सके। ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य और अप्सरागणका विचित्र सब लोक तथा प्रमथगण और असुरगणका युद्ध भी देख सके। शुक्र, भवजठरमें, शतवर्ष भ्रमण करके भी खल जैसे पवित्र व्यक्तिका छिद्र नहीं देख सकता, उसी प्रकार वहिर्गमन छिद्र देख नहीं सके। फिर भार्गवने शैवयोग अवलम्बन किये हुए शुक्ररूपसे शिवदेहाभ्यन्तरसे स्खलित होकर महादेवको प्रणाम किया; तब देवदेव, उनसे बोले, भृगुनन्दन! तुम जो शुक्रवत निःसृत हुए हो, इस कार्य्यके द्वारा ही तुम्हारा नाम शुक्र हुआ और तुम हमारे पुत्र हुए; जाओ। शुक्रके उदरसे निर्गत होनेपर, देवदेव भी अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने सोचा, ब्राह्मण जो घूमते घूमते हमारे उदरमें मरा नहीं; यही हमारा मङ्गल है। सो जो हो, महादेवके पूर्व्वोक्तरूपसे कहनेपर, सूर्य्यसमप्रभ शुक्र, चन्द्र जैसे मेघमालामें घुसता है, उसी प्रकार दानवसैन्यमें घुसे। अन्धक अन्धकसूदन और शिवसे महायुद्ध चलनेके समयसे ही भृगुनन्दन इस रूपमें शुक्र नामको प्राप्त हुए हैं। जिस तरह काव्य, शिवकी अनुग्रहसे मृतसञ्जीवनी नाम्नी परम विद्याको प्राप्त हुए थे, हे सुव्रत! वह सुनो। विष्णुपारिषद्द्वय बोले, पूर्व्वकालमें इन भृगुनन्दन अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज इन चतुर्व्विध प्राणियोंकी गतिप्रदायिनी वाराणसीपुरीमें गमनकर, शिवलिङ्ग स्थापन और शिवलिङ्गके सामने कूप निर्म्माण करके प्रभु विश्वेश्वरका ध्यान करते हुए बहुकालतक तपस्या की। राजचम्पक पुष्प, धुस्तुर पुष्प, पद्म पुष्प, मालती पुष्प, कर्णिकार पुष्प, करवीर पुष्प, कदम्ब पुष्प, वकुल पुष्प, श्वेतपद्म पुष्प, मल्लिका पुष्प, शतपत्री पुष्प, सेन्धुवार पुष्प, किंशुक पुष्प, अशोक पुष्प, करुण पुष्प, पुन्नाग पुष्प, नागकेशर पुष्प, क्षुद्र माधवी पुष्प, पाटला पुष्प, विल्व पुष्प, चम्पक पुष्प, नवमल्लिका पुष्प, चारुपुट पुष्प, कुन्द पुष्प, सुचकुन्द पुष्प, मन्दार पुष्प, वेलपत्र, द्रोण पुष्प, मरुवक पुष्प, एक प्रकारका अर्क पुष्प, ग्रस्थिपर्णी पुष्प, दमनक पुष्प, सुरभ पुष्प, आम्र मुकुल तुलसी पत्र, देवगान्धारी पुष्प, वृहत्पत्री पुष्प, कुश पुष्प, तगर पुष्प, अन्य प्रकार वक पुष्प, शालदेवदारु पल्लव, काञ्चन पुष्प, कुरुवक पुष्प, कुरुण्टक पुष्प और दुर्व्वाङ्कुर यह सब और अन्यान्य शत सहस्र प्रकार पुष्प पल्लव और पत्र एक एक करके उसकी द्वारा शिवकी पूजा करने लगे। उन्होंने द्रोणपरिमित पञ्चामृत और सुगन्ध स्नानीय द्रव्यद्वारा देवदेवको शतसहस्रवारसे लाख वार स्नान कराया। देवदेवको सहस्र उद्वर्त्तन स्नानके बाद, सहस्रवार चन्दन और कर्पूर-मृगनाभि प्रभृति द्वारा प्रस्तुत यक्षकर्द्दमसे

अनुलिप्त किया। नृत्य, गीत उपहार वेदोक्त स्तव और इसके सिवा सहस्रनाम स्तोत्र द्वारा महादेवको बहुत स्तव किया। शुक्रने इसी प्रकार पञ्च सहस्र वर्षतक शिवकी आराधना की। जब महादेवको स्वल्प-मात्र भी वरदानमें उन्मुख नहीं देखा, तब अन्यविध अति दुःसह घोर नियम ग्रहण किया। फिर कवि सब इन्द्रिय और चित्तके अत्यन्त चापल्यरूप महामलको शिवभावनारूप जल द्वारा वारंवार प्रक्षालितकर वह निर्म्मलीकृत हृदयरत्न महादेवको अर्पणकर सहस्र वर्षतक तुषधूम सेवन करते रहे। तब महात्मा भार्गवके प्रति शिव प्रसन्न हुए। साक्षात् दाक्षायणीपति विरूपाक्ष, सहस्रसूर्य्य-अपेक्षा समधिक तेजोमय रूपमें उस लिङ्गसे विनिःसृत होकर शुक्रसे बोले, हे तपोनिधि भार्गव! प्रसन्न हुआ हूं, वर प्रार्थना करो। कमल-लोचन ब्राह्मण, शिवकी यह बात सुनकर आनन्दभरे पुलक-पूर्ण देह और प्रफुल्ल-लोचन हो मस्तकमें अञ्जलिबन्धनकर जय जय शब्द कीर्त्तन करते हुए सन्तोष सहकारसे अष्टमूर्त्ति शिवका स्तव करने लगे;—हे जगदीश्वर! आप इस प्रभाजाल द्वारा समस्त अन्धकार अभिभूत करके निशाचरगणको अभिमत वस्तुजात निरस्त करते हैं और लोकत्रयके हितके लिये दिनमणिरूपमें गगनमें अत्यन्त दीप्त पाते हैं, अतएव आपको नमस्कार है। हे सुधानिकरपूर्ण हिमांशुरूपिन्! जगतमें आप अखिल तमस्तोम विद्रावित करके असीम महातेज द्वारा कुमुदप्रमोद और समुद्रका आमोद सम्पादन करते हैं, आप अतीव शोभन हैं; इसलिये आपको प्रणाम करता हूं। हे भुवनजीवन! आप सदागतिरूपसे वेदमार्गके उपासनीय हैं; जगत्में आपके सिवा जीवनदाता और कोई नहीं है। हे स्थिर-प्रभञ्जन! हे सब प्राणोके विवर्द्धक, हे अहिकुलके सन्तोषक! आप सर्व्वव्यापी हैं आपको नमस्कार है। हे भुवनैकपावन! हे अमृत! हे जगदन्त-रात्मन्! एकमात्र भवदीय पावनशक्तिके अतिरिक्त यह देवतादिन्द्रिय-पञ्चभूतसमष्टि जगत रक्षा नहीं पाता, अतएव हे पावक-रूपिन्! शान्तिप्रदाता आपको नमस्कार है। हे जगत्पवित्र! विचित्र सुचरित्र! पानीय रूपिन्! परमेश्वर! विश्वनाथ! आप इस विचित्र जगत्को पान और स्नान द्वारा वाह्य अभ्यन्तरको पवित्र करते हैं, यह जानकर आपको नमस्कार करता हूं। हे सदय! हे ईश्वर! हे आकाशरूपिन्! आपने वाह्य अभ्यन्तरमें अवकाश प्रदान किया है इसलिये यह विश्वब्रह्माण्ड विकाशको प्राप्त हुआ है। आपसे ही यह इस समय श्वास-प्रश्वास परित्याग करता है, और आपके ही प्रभावतः सङ्कोचको प्राप्त होता है अतएव आपको नमस्कार करता हूं। हे तमोनिसूदन! विश्वन्-

भराख्रूपिन्। प्रभो! विश्वनाथ! इस जगतमें आपके सिवा यह विश्वभरण और कौन करता है? हे गौरी-शोभित! भुजगभूषण! अतएव शान्ति-गुणावलम्बियोंके लिये आपके सिवा स्तवयोग्य और कोई नहीं है, सुतरां हे परात्पर! आपको प्रणाम करताहूं! हे आत्मस्वरूप! (यजमान रूप!) हे सर्व्वान्तरात्मनिलय! हे हर! आपके रूपपरम्परा द्वारा यह चराचरमय जगत परिव्याप्त है; प्रति लिङ्गशरीरमें ही आप चिदाभासरूपमें वर्त्तमान हैं, अतएव हे परमात्मतनो! अष्टमूर्त्ते! आपको नित्य प्रणाम करता हूं। हे उमादेवीके अभिवन्दनीय! वन्द्यातिवन्द्य! विश्वजनीनमूर्त्ते! हे भक्तैकलभ्य! भव! आप सब अर्थसमूहमें परमार्थ हैं; आपकी इस अष्टमूर्त्ति द्वारा ब्रह्माण्ड व्याप्त है; अतएव आपको नमस्कार करता हूं। भार्गवने इस अष्टमूर्त्यष्टक स्तव द्वारा महादेवकी अभिलाषानुरूप स्तव करके भूतलमिलित मस्तकसे पुनः पुनः प्रणाम किया। अति तेजस्वी भार्गवके महादेवका इस प्रकार स्तव करनेसे, महेश्वर, उन प्रणत-ब्राह्मणकी बाहुयुगल द्वारा धारणकरके भूतलसे उठाकर दशन-कौमुदी द्वारा दिगन्तर प्रद्योतित करते हुए बोले, अपर अननुष्ठितपूर्व्व यह तुम्हारी अत्युग्र तपस्या, लिङ्गस्थापनपूण्य, लिङ्गाराधना नियजपवित्र हृदयरत्नका उपहार प्रदान और अविमुक्त महाक्षेत्रमें पवित्र आचार द्वारा तुमको मैं पुत्रद्वयकी तरह देखता हूं, तुम्हें अदेय हमारा कुछ भी नहीं है। तुम्हारे इसी शरीरसे ही, हमारे उदर-कुहरमें प्रविष्ट होकर हमारे पुरुषेन्द्रियमार्ग द्वारा वहिर्गत होनेसे हमारे पुत्रपदवाच्य ही होगे। पार्षद्गणको भी दुर्लभ अन्य वर प्रदान करता हूं, मैंने हरि और ब्रह्मासे भी जो अनेक समयसे छिपा रखा था, महातपोवलसे मैंने जो निर्म्माण किया है, मृत-सञ्जीवनी-नाम्नी अपनी वही मन्त्ररूपा निर्म्मलविद्या अब तुमको आज देता हूं। हे महापवित्र! पवित्रतपोनिधे! उस विद्याके ग्रहण करनेकी तुममें योग्यता है। हे विद्येश्वरश्रेष्ठ! जिसको जिसको उद्देश करके यह मन्त्ररूपा विद्या, संयतभावसे आवृत्ति करोगे, वही वही व्यक्ति निश्चय बचेगा। आकाशमें तुम्हारा तेज सूर्य्यको, अग्निको और तारकाराजिको अतिक्रम करके अतीव दीप्त होकर रहेगा, अतएव तुम ग्रहश्रेष्ठ हो। तुम्हें सामने देखकर जो नर-नारिगण यात्रा करेंगे, तुम्हारे दृष्टिपातसे ही उन लोगोंका सब कार्य्य प्रनष्ट होगा। हे सुव्रत! तुम्हारे उदय होनेपर पृथिवीमें मनुष्योंका विवाहादि समग्र धर्म्मकार्य्य अनुष्ठित होनेपर, सफल होगा। सब नन्दातिथिगण तुम्हारे संसर्गसे मङ्गलदायिनी होंगी। तुम्हारे भक्तगण, बहुशुक्र और बहुप्रजा-प्रसन्न होंगे। तुम्हारा स्थापित, 'शुक्रेश' नामक इस लिङ्गकी

जो मनुष्य पूजा करेंगे, उन्हें सिद्धि होगी। जो सब मनुष्य, एक वर्षतक प्रति शुक्रवारको, नक्तव्रत-परायण होकर इस दिनमें ही शुक्रकूपमें स्नानादि सर्व्वप्रकार जलकृत्य सम्पादनकर शुक्रेश्वर महादेवकी पूजा करेंगे, उनका फल सुनो। वह सब मनुष्य, निश्चय ही अमोघ-वीर्य्य, पुत्रवान्, अति वीर्य्यशाली और पुंसत्त्व-सौभाग्य-सम्पन्न होंगे। उन सब लोगोंको कोई विघ्न नहीं मिलेगा और अन्तको शुक्रलोकमें सुखसे वास करेंगे। यह सब वर देकर देवदेव, उसी लिङ्गमें लीन हुए। विष्णु-पारिषद्द्वय बोले, जो शुक्रेश्वरके भक्त हैं, वह शुक्रलोकमें वास करते हैं। हे परन्तप! विश्वेश्वरके दक्षिणमें शुक्रेश्वरलिङ्ग अवस्थित है! शुक्रेश्वरके दर्शन मात्रसे अन्तमें शुक्रलोकमें पूजित होकर वास करते हैं। हे महामते! शुक्रलोककी स्थिति यह तुमसे कही। अगस्त्यने कहा, हे सुव्रते! सहधर्म्मिणि! द्विज शिवशर्म्मा, इस प्रकार शुक्रलोककी कथा सुनते सुनते कुछ क्षणके बाद मङ्गललोक देख सके!

षोड़श अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय।

मङ्गल, वृहस्पति और शनिलोकका वृत्तान्त।

शिवशर्म्मा बोले, हे देवद्वय! शुक्रसम्बन्धिनी शुभकथा मैंने श्रवण की, इसे श्रवण करनेहीसे मेरे दोनो श्रोत्र परितृप्त हुए! इस समय परिदृश्यमान यह शोभाकारी निर्म्मल लोक, किस पुण्यनिधिका है? मुझसे आप यही कहिये। आप लोगोंके मुखसे सुखसे उद्गत अमृततुल्य वाणी श्रवणपुटपात्र द्वारा पीनेसे आशा नहीं मिटती। विष्णु-पारिषद्द्वय बोले, शिवशर्म्मन्! चित्त देकर सुनो, यही लोक, लोहिताङ्ग मङ्गलका है। यह जिस तरह भूमिनन्दन हुए; वह सब इनका उत्पत्ति-वृत्तान्त कहता हूं। पूर्व्वकालमें दाक्षायणी-विरहसे तपस्या-परायण शम्भुके ललाटदेशसे एक बिन्दु घर्म्म भूतलपर गिरा, उसीसे भूतलमें एक लोहिताङ्ग कुमार उत्पन्न हुये। धरित्रीने, मातृरूपसे, उस कुमारका स्नेहपूर्व्वक लालन पालन किया। इसीलीये लोहिताङ्ग, 'माहेय' यह परमख्याति सर्व्वदा प्राप्त हुए हैं। हे अनघ! जगतको हितकारिणी असि, वरणा—दोनो नदी, जिस जगह उत्तरवाहिणी गङ्गासे मिली हुई हैं विश्वेश्वर सर्व्वव्यापी होनेपर भी जिस-जगह यथाकाल परित्यक्त-देह प्राणिगणको मुक्तिके लिये विशेषरूपसे नित्य अधिष्ठित हैं, जिस जगह मृत्यु होनेसे देहिगण विश्वेश्वरके परम अनुग्रहको प्राप्त होकर निश्चय ही मुक्ति लाभ करते हैं, जिस अविमुक्त-क्षेत्रमें देह त्याग करनेसे, सांख्य-योग और विविध व्रतादिके व्यतिरेक भी पुनर्जन्मसे अव्याहति मिल जाती है; उसी

त्रिपुरारि नगरी काशीमें जाकर लोहिताङ्ग अङ्गारकने अत्युग्र तपस्या की थी। कम्बलेश्वर-अश्वतरेश्वर-लिङ्गके उत्तर पार्श्वस्थ महापीठपर महात्मा अङ्गारने, स्वनामानुसार 'अङ्गारकेश्वर' लिङ्ग प्रतिष्ठित करके, जितने दिनतक उनके शरीरसे ज्वलन्त अङ्गारवत् तेजन गीतन हुआ, उतने दिनतक तपस्या की। इसलिये सम्पूर्ण लोकमें वह अङ्गारक नामसे कीर्त्तित हुए। महादेवजीने उनपर सन्तुष्ट होकर महत् ग्रहपद, उनको प्रदान किया। जो लोग मङ्गलवार चतुर्थीको उत्तर-वाहिणी गङ्गामें स्नानपूर्व्वक अङ्गारकेश्वर शिवकी पूजा करके प्रणाम करेंगे, उन नरोत्तम लोगोंको कभी किसी स्थानमें ग्रह-पीड़ा न होगी। मङ्गलवारयुक्त चतुर्थी यदि मिले, तो उसे कालवेत्तृगणने ग्रहण तुल्य-पर्व्व कहा है। उस दिनके दान, होम, जप सब अक्षय होते हैं। जो लोग मङ्गलवार चतुर्थी योगमें श्रद्धापूर्व्वक श्राद्ध करते हैं, उन लोगोंके पितृगणकी इसी एक श्राद्धसे द्वादश वर्षतक तृप्ति होती है। पूर्व्वकालमें गणपतिने, मङ्गलवारयुक्त चतुर्थीको जन्म ग्रहण किया था, इसीलिये वह पुण्य-सम्भार-प्रद पर्व्व कहा जाता है। मङ्गलवार-चतुर्थीको एकभक्त हो गणेशोद्देशसे गणेशपूजा करनेका सङ्कल्प करके कुछ भी दान करनेसे विघ्न द्वारा अभिभूत होना नहीं पड़ता। काशीस्थित अङ्गारकेश्वर शिव-लिङ्गके भक्त नरोत्तमगण, इसी अङ्गारक-लोकमें परम-समृद्धि-सम्पन्न होकर वास करते हैं। अङ्गारकेश्वरकी महिमाकी कथा कही गई। अगस्त्यजी कहने लगे, भगवत्पारिषद्‌द्वयने यह रमणीय पवित्र कथा कीर्त्तन करनेमें बृहस्पतिलोकको देखा। तदनन्तर शिवशर्म्मा, वह नयना-नन्दकारी आश्चर्य्यवरकी पुरी अवलोकन करके उन लोगोंसे पूछने लगे, यह अत्युत्कृष्ट पुरी किसकी है? विष्णुपारिष-द्वय बोले, सखे! तुम्हारे निकट अवक्तव्य कुछ भी नहीं है; पथश्रमापनयनके लिये फिरसे इस नगरीकी कथा, तुम्हारे निकट सुखसे हम कीर्त्तन करते हैं। पूर्व्वकालमें, आनन्दपूर्व्वक त्रिलोकविधानेच्छु ब्रह्माके मरीचि-अत्रिप्रमुख आत्मतुल्य सप्त मान-सपुत्र उत्पन्न हुए। वह सब सृष्टि-प्रवर्त्तक थे। उनमें प्रजापति, अङ्गिराके आङ्गिरस नामक एक देवप्रवर पुत्र हुए; वह बुद्धि द्वारा सब देवताओंमें प्रधान हुए। वह शान्त, दान्त, जितक्रोध, मृदुभाषी और निर्म्मलाशय थे। वह, वेदवेदार्थतत्त्वमें अभिज्ञ कलाकुशल, सर्व्व शास्त्रमें पारदर्शी, अतिशय नीतिवेत्ता और निर्दोष थे। वह हितोपदेष्टा, हितकारी, सदा अहितातीत, रूपवान्, सुशील और देशकालवेत्ता थे इन सर्व्वसुलक्षणाक्रान्त गुरुवत्सल दिव्यतेजा महातपा आङ्गिरसने, महत् शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित करके महती तापस-वृत्ति अवलम्बन-

पूर्व्वक देवपरिमाणसे अयुत वर्षतक एकाग्रचित्तसे तपस्या की। तदनन्तर विश्वभावन भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न होकर उसी लिङ्गसे तेजोराशिरूपसे आविर्भूत हुए और तत्पश्चात् बोलने लगे, "मैं प्रसन्न हुआ हूं, आपके मनमें जो वर लेनेकी इच्छा है, उसे कहो।" तब वृहस्पति, शम्भु-को अवलोकन करते ही आनन्दित होकर इस प्रकार स्तव करने लगे ;—हे शङ्कर! हे शान्त! हे शशाङ्कप्रभ! हे चारुपुरुषार्थद! हे सर्व्वद! हे सर्व्वशुचे! आप पवित्र व्यक्ति कर्त्तृक प्रदत्त उपहार ग्रहण करते हैं और भक्तजनका प्रबल ताप-समूह हरण करते हैं; आप जयी हों। हे वरदगणनमस्कृत! आप सबके हृद-याकाशको व्याप्त किये हैं, प्रणत जन-गणके पापमहारण्य आप ही दग्ध करते हैं, आपका अष्टतनु विविध-आचरण-सम्पन्न है, हे सुतनो! हे धैर्य्यनिधे! आपने कुसुमा-युधको विशुष्क किया है, आपकी जय हो। हे निधनादिविवर्ज्जित! आपके प्रति प्रणत विचक्षणगण जो अभिलाषा किया करते हैं, आप वही सम्पादन करते हैं, हे फणि-भूषण! गिरीन्द्रतनयाको आपने वामाङ्ग प्रदान किया है,आपने स्वयं अष्टशरीर द्वारा सर्व्व जगत्को व्याप्त किया है, आप भी जय हो। हे त्रिगणस्वरूप! रूपहीन सच्चित्! आपके नयनावर्त्तनसे सङ्कोच (प्रलय) होता है और आप ही सृष्टिके स्रष्टा हैं, हे भव! हे भूतपते! हे प्रमथैकपते! आप पतित-जनोंका भी हस्तावलम्बन करते हैं। हे अखिलभूतलव्यापक! प्रणवशब्द आप-का बोध है, हे सुधांशुधर! परमा गिरि-राजकुमारी आपके समीप रहकर सन्तो-षविधान करती हैं,हे शिव! आपको प्रणाम करता हूं। हे शिव! हे देव! हे गिरीश! हे महेश! हे प्रभो त्रिभवप्रद गिरीश! हे शिवाकान्त! आप भक्तिविघातकारी, कामक्रोधादि और अन्धकादि असुरगणको यन्त्रणा प्रदान करते हैं। हे मृड! आप त्रैलोक्यका सुख सम्पादन करते हैं। हे हर! मैं अब यमका भी भय नहीं करता; हे अमोघमते! शीघ्र हमारी महापापराशिको हरण कीजिये। मैं अन्य किसी मतको शिवचरणको प्रणामकी अपेक्षा मङ्गलकर विवेचना नहीं करता; अतएव आपको प्रणाम करता हूं। इस सुविशाल निखिल विश्वब्रह्माण्डमें शिवका सन्तोष साधन ही परम गुणवत् और पापहारक है अतएव हे सर्पराज-महावलयभूषित निर्गुणेश्वर! आपको नमस्कार करता हूं। अङ्गिरोनन्दन, महादेवका इस प्रकार स्तव करके विरत हुए, और महेश्वरने स्तुतिसे परितुष्ट होकर बहुतर वर प्रदान किये! महादेव बोले, हे द्विज! इस वृहत् तपस्याके प्रभावसे, तुम वृहत् अर्थात् इन्द्रादि देवगणोंसे श्रेष्ठ हो; इसी कारण (वृहत् पति) वृहस्पति नाम प्राप्त होकर ग्रहगणोंके बीच वर्णनीय हो।

इसी लिङ्गके पूजाके प्रभावसे तुम हमारे जीवनस्वरूप हुए हो, इसीसे त्रैलोक्यमें 'जीव' यही नाम प्राप्त होगा। प्रपञ्चातीत तुमने उत्तम वाक्प्रपञ्च द्वारा स्तव किया है, इसी वाक्प्रपञ्चके आधिपत्य निबन्धनसे तुम वाचस्पति हो। तीन वर्षतक त्रिकाल भक्तिभावसे इस स्तोत्रका पाठ करनेसे अथवा श्रवण करनेसे वाग्विशुद्धि होगी। जो लोग इस वायव्य नामक स्तोत्रका दिन प्रति पाठ करेंगे, उत्तम कार्य्यका समय उपस्थित होनेसे वह बुद्धिहीन न होंगे। इस स्तोत्रका नियमानुसार हमारे समीप पाठ करनेसे अविवेकी मनुष्योंकी भी दुर्वृत्तितामें प्रवृत्ति न होगी। प्राणी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे कभी ग्रहजनित पीड़ाको प्राप्त न होगा। अतएव हमारे सम्मुख इस स्तोत्रको पढ़ना चाहिये। जो मनुष्य नित्य-प्रातःकाल उठकर यह स्तोत्र पाठ करेगा, मैं उसकी सुदारुण बाधा सम्पूर्णरूपसे हरण करूंगा। प्रयत्नपूर्व्वक, तुम्हारे प्रतिष्ठित इस लिङ्गकी पूजा करके जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसकी मनोवांछा पूर्ण होगी। शिवने, आङ्गिरसको यह वर दे तत्पश्चात् ब्रह्माको इन्द्रादि देवगणको और यक्षकिन्नर भुजङ्गादि सबको आह्वान किया। शिव, उन लोगोंका आगमन देखकर ब्रह्मासे बोले "विधि! अपने गुणोंमें सर्व्वश्रेष्ठ इन मुनि वाचस्पतिको हमारे कथनानुसार सब देवप्रवरगणका गुरु करो। सबके प्रीतिलाभके लिये इनको यथाविधि सुराचार्य्य पदपर अभिषिक्त करो। हमारे प्रीतिपात्र यह वाचस्पति अत्यन्त बुद्धिके अधीश्वर होंगे।" ब्रह्माने, "महाप्रसाद" कहकर शिवजीके आदेशको मस्तकपर लेकर, अङ्गिरोनन्दनको तत्क्षण सुराचार्य्य किया। देवदुन्दुभि बजने लगीं, अप्सरागण नाचने लगीं। देवगण प्रीतिप्रफुल्लवदनसे गुरुपूजा करने लगे। वसिष्ठादि ऋषिगणने मन्त्रपूत जल द्वारा वृहस्पतिका, अभिषेक किया। गिरीशने, वाचस्पतिको पुनः अन्य वर दिया, हे धर्म्मात्मन्! कुलानन्द! देवपूज्य! आङ्गिरस! तुम्हारा स्थापित यह सुबुद्धिपरिवर्द्धक लिङ्ग, काशीमें वृहस्पतीश्वर नामसे विख्यात होगा। पुष्यानक्षत्रयुक्त वृहस्पतिवारको मनुष्यगण इस लिङ्गकी पूजा करके जो कुछ करेंगे, वही सिद्ध होगा। मैं कलियुगमें वृहस्पतिका लिङ्ग गोपनकर रखूंगा। मनुष्य इस लिङ्गके दर्शन मात्र होसे प्रतिभाशाली बन सकता है। चन्द्रेश्वर लिङ्गके दक्षिण वीरेश्वर शिवके नैऋत्यमें अवस्थित वृहस्पतीश्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे वृहस्पतिलोकमें सम्मान सहित वास करता है। छः मास इस शिवलिङ्गकी सेवा करनेसे, सूर्य्योदयमें अन्धकारके सदृश, गुरुपत्नीगमन-सम्भूत पाप भी अवश्य विनष्ट होता है। अतएव, यह महापातक

विनाशन बृहस्पतीश्वर लिङ्गका फल गोपनीय है; यह किसी स्थानमें प्रकाशित नहीं किया गया। देवदेव, यही सब वर देकर उस लिङ्गमें अन्तर्हित हो गये। ब्रह्माने, इन्द्र, विष्णु और बृहस्पतिके सङ्ग इस लोकमें आकर बृहस्पतिको इस लोकमें अभिषिक्त करके इन्द्रादि देवगणको विदा देकर विष्णुकी अनुमतिसे, स्वधामकी शोभा सम्पादन की। अगस्त्य बोले, हे लोपामुद्रे! शिवशर्म्माने, बृहस्पतिलोक अतिक्रमपूर्व्वक, प्रभामण्डलमण्डित अग्निलोक देखा। हे शुचिस्मिते! उस समय शिवशर्म्माके पूछनेसे पारिषदप्रवरद्वय उस श्रेष्ठ नगरीका विवरण, उनसे करने लगे।—हे द्विज! मरीचिनन्दन कश्यपके औरस और दाक्षायणीके गर्भसे सूर्य्यको उत्पत्ति हुई। प्रजापति त्वष्टाकी कन्या संज्ञा, उनकी भार्य्या थीं। सुदीप्ततपःसमन्विता रूपयौवनशालिनी संज्ञा, स्वामीकी अत्यन्त प्रिय थीं। संज्ञा, सूर्य्यमण्डलका तेज और आदित्यका उष्णारूप, गात्रमें ग्रहण करती थीं सही; किन्तु उनका शरीर मानो क्रमशः (तेजोहीन) मन्द होने लगा। यह अण्डस्थित बालक न मरे, कश्यपने स्नेहपूर्व्वक यह बात कही थी, इसी कारण तबसे जगतमें सूर्य्य, मार्त्तण्डके नामसे अभिहित होने लगे। तिग्मरश्मिमाली मार्त्तण्ड, जिसके द्वारा त्रैलोक्य सन्तापित करते हैं, वही अभ्याधिक तेज संज्ञाके लिये असह्य हुआ। ब्रह्मन्! तेजोनिधि आदित्यने, उन संज्ञाके गर्भसे दो प्रजापति पुत्र—ज्येष्ठ वैवस्वत मनु, कनिष्ठ यम और यमुना नाम्नी एक कन्या उत्पादन की। संज्ञा, सूर्य्यका अतितेजोमय रूप सह्य करनेमें जिस समय अत्यन्त असमर्था हुईं, तब उन्होंने अपने शरीरसे अपनी सवर्णा मायामयी छाया निर्माण की। तदनन्तर छाया प्रणामपूर्व्वक हाथ जोड़ संज्ञासे कहने लगी, 'देवि! मैं आपकी आज्ञाकारिणी हूं; क्या करूं? मुझे आदेश कीजिये, तदनन्तर संज्ञा, छायासे कहने लगीं, हे मेरी सवर्णे सुन्दरी! मैं अपने पिता विश्वकर्म्माके गृह जाती हूं, और हे कल्याणि! तुम मेरे आदेशसे निःशङ्क मेरे गृहमें वास करो। यह मनु, यह यमज यम-यमुना, इन तीनो शिशुओंको अपने अपत्यवत् देखना। हे शुचिस्मिते! स्वामीके निकट यह वृत्तान्त न कहना।" यह सुन छाया, विश्वकर्म्मादुहिताने संज्ञादेवीसे कहा, 'देवि! यह वृत्तान्त न कहनेके अपराधमें जबतक मेरा केशपाश न ग्रहण किया जावेगा, अथवा जबतक शाप सम्भावना न होगी, तबतक यह आचरण मैं कीर्त्तन न करूंगी; हे देवि! आप यथासुख गमन कर सकती हैं। संज्ञाके अन्य पूर्व्वोक्त आदेशपर, छायाने 'वही करूंगी,' कहकर स्वीकार किया। संज्ञा पिता त्वष्टा विश्वकर्म्माके निकट आकर प्रणाम करके बोलीं, "पिता! महात्मा, तेजोनिधि आद्य-

पुत्र काश्यपके उस तीव्र तेजको मैं सह नहीं सकती।" उसकी बातें सुनकर पिताने उसे बहुत भर्त्सना की और वारंबार पतिके समीप जानेका आदेश करने लगी। उस समय संज्ञा, महाचिन्तान्विता होकर 'स्त्रियोंकी चेष्टाको धिक्!' कहकर अपनी निन्दा करने लगीं, और स्त्रीजन्मकी अतीव निन्दा करने लगीं। स्त्रियोंकी कभी स्वतन्त्रता नहीं, इस पराधीन जीवनको धिक्! शैशव, यौवन और वार्द्धक्य सब समय स्त्री जाति यथाक्रम पिता, स्वामी, पुत्रके निकट भय पाती हैं। हाय मुझ दुर्व्वृत्ताने मूढ़ता प्रयुक्त हो पतिगृह परित्याग किया है। अबतक भी सम्पूर्ण वृत्तान्त स्वामीके अवगत नहीं हुआ पतिगृहमें अवश्य जा सकती हूं, किन्तु पूर्ण-मनोरथा सवर्णा वहां है। (वह छोड़ेगी क्यों? और दोनोको देखकर स्वामी सब जान जांयगे) पिताके अतीव भर्त्सना करनेपर भी यदि मैं इस स्थानमें रहूं, ऐसा होनेसे, अति प्रचण्ड चण्डरश्मि मातापिताके पक्षमें अति भयङ्कर होंगी। मनुष्य जो "हाथसे ज्वलन्त अङ्गार आकर्षण" यह पक्की बात कहा करते हैं, मैंने उसे स्पष्ट ही देखा, यही अपने हाथमें ज्वलन्त अङ्गार आकर्षण है। पतिगृह मूढ़तासे विनष्ट हुआ, पितृगृहमें भी मङ्गल नहीं है। सुन्दर प्रथम वयस त्रिभुवनवाञ्छितरूप, सबका प्रलोभन स्थील, तिसपर अति निर्म्मल कुल, फिर स्वामी ऐसे सर्व्वज्ञ, लोकनयनको तमोहर; सर्व्वकर्म्मसाक्षी, सर्व्वगामी और सर्व्वस्वरूप हैं। मेरा मङ्गल किस प्रकार होगा? अनिन्दिता संज्ञाने इस प्रकार चिन्ता करके, तपस्या करनेके लिये वड़वा रूपसे गमन किया। उत्तर कुरुमें जाकर नीरस तृण मात्र भोजन करके पतिको हृदयमें स्थापनपूर्व्वक, तपस्याके प्रभावसे "पतिका तेज जिसमें उत्तम रूपसे सह्य कर सकूं" इसी कामनासे तीव्रतपस्या करने लगीं। रविने उसी सवर्णा छायाको ही संज्ञा समझकर, उनसे अष्टममनु, उत्तम गुणवान् सावर्णि, द्वितीय पुत्र शनि और तृतीया तपती नाम्नी मंगलमयी कन्या उत्पादन की। सवर्णा, अपने अपत्यगणपर अधिक स्नेह करने लगीं और स्त्री स्वभावके दोषसे सपत्नीसम्बन्धप्रयुक्त पूर्व्वज वैवस्वत मनु आदिके प्रति उतना स्नेह न करतीं। ज्येष्ठ मनु उसे सहन करते। किन्तु यम, खाद्य सामग्री अलङ्कार और लालन-पालन करनेके सम्बन्धमें सावर्णि आदि कनिष्टगणकी सबलता सहन न कर सके। यमने एक दिन बालकताप्रयुक्त और भवितव्यताके गौरवसे रोषवशतः सवर्णाको पद उठाकर तर्ज्जना की। उस समय अतीव दुःखिता सावर्णिजननीने क्रोध करके उन्हें शाप दिया, "अरे पापिष्ठ! मुझे आघात करनेको तूने जो पांव उठाया है, अविलम्ब ही वह पैर तेरा गिर पड़े।" मातृशाप-

परित्रस्त यमने भी "रक्षा करो, रक्षा करो" कहकर पिताके समीप वह सब कीर्त्तन किया। माता सब पुत्रोंपर समान व्यवहार करती हैं, मा किन्तु यह नहीं करतीं, इसीसे मैंने बालकत्व या मोहप्रयुक्त हो, उन्हें केवल पांव दिखाया था, किन्तु प्रहार नहीं किया। वह अपराध मेरा दूर कीजिये। हे गोपते! मातृशापसे मेरा यह पांव जिसमें गिर न पड़े। सूर्य्यदेवने कहा, वह्न सहस्र अपराध करनेपर भी जननी पुत्रको शाप नहीं देतीं, अतएव हे बालक! धर्मज्ञ सत्यवादी तुन्हें जो उन्होंने क्रोध करके शाप दिया, इस विषयमें कोई कारण होगा। मातृशापको एकबारगी ही अन्यथा कभी कोई कर नहीं सका। कृमिगण तुम्हारे पांवका मांस लेकर भूतलमें जायंगी, (तुम्हारा एक पांव पूय-क्लिन्न और कृमिव्याप्त होगा) इस प्रकार तुम्हारी मातृशापका साफल्य होगा और तुम भी रक्षित होगे। सूर्य्यदेव, पुत्रको इस प्रकार आश्वास देकर अन्तःपुरमें पधारे, अति विलम्बके पश्चात् स्त्रीके देख पड़नेपर बोले अयि भामिनि! अपत्य सभी समान हैं, तथापि तुम कनिष्ठ सावर्णि प्रभृतिके प्रति अधिक स्नेह क्यों करती हो? सूर्य्यदेवके इस प्रकार पूछनेपर भी जब छायाने उन्हें कुछ जवाब न दिया, तब आत्म-समाधान-पुरस्सर सविता सब बातोंसे अवगत हुए। उस समय भगवान् सूर्य्यदेव अभिशाप देनेको जब उद्यत हुए, तब छायाके यथार्थ पूर्व्ववृत्तान्त कहनेपर उससे भगवान् सूर्य्यदेव भी सन्तुष्ट हुए। सत्य कथा कहनेपर रविने छायाको निरप-राधिनी जानकर शाप नहीं दिया; क्रोध-युक्त विश्वकर्म्माके समीप गये। त्वष्टाने क्रोधसे दग्ध करनेकी अभिलाषा जान तिग्मतेजा सूर्य्यको पहले शान्त करके हर्षसे पूजा की। त्वष्टा पहले ही सूर्य्य-देवका अभिप्राय जान शीघ्र ही उनसे कहने लगे, हे सूर्य्य! संज्ञा, आपके अति तेजसे भयभीत हो उत्तर-कुरुमें बड़वा होकर शाद्वल वनमें विचरण करती है। तेज और नियम प्रभावसे, सर्व्वभूतोंकी अधृष्या, आर्य्यचारिणी स्वभार्य्याको आज आप देखेंगे। विश्वकर्म्माने सूर्य्यकी अनुमति पाकर यत्नपूर्व्वक सूर्य्यदेवको कुंद नामके यन्त्रपर चढ़ाकर खराद दिया। उससे सूर्य्यदेव अत्यन्त कमनीय हो गये। अनन्तर सूर्य्यने श्वशुरकी अनुमति पाकर शीघ्र उत्तर-कुरुमें जाकर साक्षात् तपोलक्ष्मी-सदृशी, महा तपश्चारिणी, बड़वानलतेजस्विनी, योग मायावलम्बन किये नीरस तृण मात्राहारा एक बड़वाको देखा। सूर्य्यने नीरस तृणमात्रभोजन और अमितेज अव-लोकन करके, बड़वारूपिणी विश्वकर्म्मा-तनयाको पहचान आप भी अश्वरूप अवलम्बन करके बड़वाके मुखमें सङ्गम किया। बड़वारूपिणी संज्ञाने, परपुरुषकी

प्रज्ञासे अत्यन्त शीघ्रतापूर्व्वक नासिकापुट द्वारा वही सूर्य्य-वीर्य्य वमन कर दिया। उसीसे देववैद्यप्रवर अश्विनीकुमारद्वयने जन्म ग्रहण किया। उस समय रविने, अपना अनुरूप रूप संज्ञाको दिखाया। उसी समय पतिव्रता संज्ञा भी, मनस्तापहारी नयनानन्दकर कमनीयरूप पति सूर्य्यको अवलोकन करके संतुष्ट हुईं और परम निर्वृतिको प्राप्त हुईं। तपस्यासे क्या दुर्लभ है? तपस्या ही परम मङ्गल है तपस्या ही परम धन है, तपस्याको ही देवत्वका परम कारण जानना। शिवशर्म्मन्! आकाशमें ऊर्द्ध-अधोदिशमें यह जो अतिदीप्तिमत् जोतिश्चक्र-स्वरूप अवलोकन करते हो, समझो, यह सभी तपस्याका सुमहत् तेज है। पूर्व्वोक्तरूपसे सवर्णा छायाके गर्भसे सूर्य्यके औरससे शनैश्चर उत्पन्न हुए। तदनन्तर सर्व्वदेववन्दिता वाराणसी पुरीमें जाकर शिव लिङ्ग स्थापनपूर्व्वक अति विपुल तपस्या करके उन्होंने उस शिवाराधनाके फलसे यह उच्चलोक और ग्रहत्व प्राप्त किया है। काशीमें सुशोभन शनैश्चरेश्वरलिङ्ग दर्शन और शनिवारको उनकी पूजा करनेसे शनिपीड़ा नहीं होती। विश्वेश्वरके दक्षिण और शुक्रेश्वरके उत्तर अवस्थित शनैश्चरेश्वर लिङ्गकी पूजा करनेसे लोग इस शनिलोकमें आनन्द लाभ करते हैं। काशीमें रहकर इस पवित्र अध्यायका श्रवण करनेसे ग्रहपीड़ा नहीं होती, उपसर्ग भय भी नहीं रहता।

सप्तदश अध्याय समाप्त ॥१७॥

अष्टादश अध्याय।

सप्तर्षिलोक वृत्तान्त।

अगस्त्यने कहा, मुक्तिपुरी काशीके सुख्यात, मायापुरीमें पञ्चत्वप्राप्त, मथुरा-वासी ब्राह्मण शिवशर्म्माने, विष्णुपुरी देखनेके प्रभावसे, अन्तमें विष्णुलोक गमन करते हुए इस कथाको सुनते सुनते सप्तर्षिमण्डल देख पाया। चारण मागध शिवशर्म्माका स्तव करने लगे, देवकन्या "इस जगह क्षणकाल अवस्थान करिये, अवस्थान करिये" इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं, फिर निश्वास परित्यागपूर्व्वक देवकन्या उठ खड़ी हुईं और उन्होंने कहा, "हमलोग मन्द भाग्या हैं; यह पुण्यवत्तम, पुण्यतमलोक समुदयको प्राप्त होगा।" विमानस्थित शिव-शर्म्माने, उन लोगोंके मुखसे इस प्रकारकी बातें सुनते सुनते विष्णु-पारिषद्द्वयसे पूछा, "देवद्वय! यह तेजोमय अतुलनीय शुभलोक किसका है?" ब्राह्मणकी यह बात सुन-कर विष्णुपारिषद्सत्तमयुगल कहने लगे, हे शुभबुद्धि शिवशर्म्मन्! विश्वस्रष्टाके नियुक्त निर्म्मल सप्तर्षि, प्रजासृष्टिके लिये इस स्थानमें सतत वास करते हैं। मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा और

महाभाग वसिष्ठ, यह सप्तर्षि ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। यह सातो ही पुराणमें 'ब्रह्मा' कहकर निश्चित हुए हैं। सम्भूति, अनुसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, स्मृति और ऊर्ज्जा यह सातो रमणी यथाक्रम पूर्व्वोक्त सप्तर्षिकी पत्नी हैं; यह लोकमाता हैं। सप्तर्षिके तपोबलसे ही त्रिभुवन रक्षित होता है। पूर्व्वकालमें, ब्रह्माने इन महर्षिगणको उत्पादनकर कहा, "हे पुत्रगण, प्रयत्न सहित नानारूपसे प्रजाकी सृष्टि करो!" फिर तपस्यामें कृतनिश्चय सप्तर्षिने, सर्व्व प्राणीकी मुक्तिके लिये महादेव जहां सर्व्वदा ही विराजमान हैं, ब्रह्माको प्रणाम करके उस देवद्वाधिष्ठित अविमुक्त क्षेत्रमें आगमनकर, अपने अपने नामानुसार सप्तलिङ्ग प्रतिष्ठा करके शिवके प्रति परम प्रगाढ़ भक्तियोगसे अतीव उग्र तपस्या की। शिवने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन लोगोंको प्राजापत्य पद प्रदान किया। काशीमें पत्नीश्वरादि लिङ्ग यत्न सहित देखनेपर, मनुष्य इस प्राजापत्यलोकमें उज्ज्वल तेजःसम्पन्न होकर वास करता है। गोकर्णेश्वर सरोवरके पश्चिम तीरमें अवस्थित अत्रीश्वर लिङ्ग अवलोकन करनेसे ब्रह्मतेज वृद्धि होती है। कर्कोटबापीके ईशानकोणमें उत्तम मरीचिका कुण्ड है; मनुष्य वहां भक्तिपूर्व्वक स्नान करनेसे सूर्य्यवत् दीप्ति पाता है। हे विप्र! वहां मरीचीश्वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठित है। इस लिङ्गके दर्शनसे मरीचिलोक प्राप्त होता है और वह पुरुषश्रेष्ठ, मरीचिमालीकी तरह कान्तिसम्पन्न होकर रहता है। पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर शिवलिङ्ग स्वर्गद्वारके पश्चिम अवस्थित हैं; मनुष्य उनके अवलोकनसे प्राजापत्य लोकमें सम्मानित होकर वास करता है। हे विप्र! रमणीय हरिके भवनमें आङ्गिरसका शिवलिङ्ग दर्शन करनेसे, तेजःपूर्ण होकर इस प्राजापत्य लोकमें वास करता है। वरणानदीके रमणीय तीरस्थित वसिष्ठेश्वर और क्रत्वीश्वर दर्शन करनेसे इस प्राजाप्रत्य लोकमें वासप्राप्ति होती है। मङ्गलाभिलाषी व्यक्तिगण, वाराणसीके इन सब शिवलिङ्गकी सेवा करें, करनेसे यह सेवकोंको ऐहलौकिक पारलौकिक मनोवाञ्छा पूर्ण करते हैं। विष्णु-पारिषद्द्वयने कहा, महाभाग शिवशर्म्मन्! जिनके स्मरणमात्रसे गङ्गास्नानफल प्राप्त होता है, वही महापुण्यवती पतिव्रतपरायणा अरुन्धती सुन्दरी इस लोकमें अवस्थिता हैं। प्रभु नारायणदेव, इन अरुन्धतीके पतिव्रात्य धर्म्मसे परम परितुष्ट होकर अन्तःपुरचर दो तीन जन पवित्र व्यक्तिसे लक्ष्मीके सम्मुख इनकी कथा सदा आनन्दसे कीर्त्तन करते हैं। नारायण कहते हैं, कमले! पतिव्रताओंमें अरुन्धतीका जैसा निर्म्मल आशय है, हे भामिनि! अन्य किसी रमणीका कहीं भी उस प्रकारका पवित्र आशय नहीं है। प्रिये!

रूप, शील कौलीन्य, कलानैपुण्य, पतिशुश्रुषा, माधुर्य्य, गाम्भीर्य्य और गुरुजनके सन्तुष्ट करनेमें अरुन्धती जैसी हैं, वैसी और कहीं नहीं हैं। जो प्रसङ्गक्रमसे भी अरुन्धतीका नाम ग्रहण करें, जगतमें वह सब शुद्धबुद्धि सौभाग्यशालिनी रमणी धन्य हैं। हमारे भवनमें जब पतिव्रताओंकी बात उठती है, तब यह सती अरुन्धती ही सर्व्वप्रथम श्रेणी अलङ्कृत करती हैं। विष्णुपारिषद्द्वयने, इस तरह यह प्रमोदावह बातचीत करते करते सत्यपूर्ण ध्रुवलोकको देखा।

अष्टादश अध्याय समाप्त ॥१८॥

एकोनविंश अध्याय।

ध्रुवचरित्र, ध्रुवका गृहत्याग

शिवशर्म्मा बोले, हे साधुप्रवरद्वय! एकीभूत पदद्वय द्वारा अवस्थित, वातमयविविधरज्जू-निहित कराङ्गुलि, यह कौन चञ्चल नयन भ्रमण करते हैं? यह तेजःसंवृत पुरुष त्रैलोक्यमण्डपके महास्तम्भ स्वरूप, तुलादण्ड द्वारा मानो यह अतुलनीय ज्योतिराशि नापते हैं; यह मानो आकाश विस्तृतिके परिमापक सूत्रधार हैं; अथवा यही गगनाङ्गनमें उत्थित त्रिविक्रमके चरणदण्ड हैं; किंवा यह गगन सरोव के मध्यप्रोथित सारयुप (लट्ठा) स्वरूप हैं। हे देवद्वय! यह कौन हैं;—अत्यन्त दया करके मुझसे यह कहिये। विमनारूढ़ विष्णुपारिषद्द्वय बन्धुकी यह वार्त्ता सुनके प्रणयवशतः ध्रुवका चिरस्थायी वृत्तान्त कीर्त्तन करने लगे; स्वायम्भुव मनुके उत्तानपाद नामक एक पुत्र थे। हे विप्र! उन राजाके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें सुरुचिके गर्भसे ज्येष्ठ उत्तम, और सुनीतिके गर्भसे कनिष्ठ ध्रुव हुए। एक दिन सभामें राजा उपविष्ट हैं, सुनीतिने, बालक ध्रुवको वेशभूषासे सज्जित करके राजसेवाके लिये राजाके समीप भेज दिया। विनयतत्पर ध्रुवने धात्रीपुत्रोंके साथ राजसभामें जा भूपति उत्तानपादको प्रणाम किया। उस समय सुनीतिपुत्र ध्रुव, उच्च सिंहासनस्थित पिता महाराजके क्रोड़में उत्तमको उपविष्ट देखकर बाल्यचापल्य प्रयुक्त हो आप भी आरोहण करनेके अभिलाषी हुए। सुरुचि ध्रुवको राजाके क्रोड़में आरोहण करनेका अभिलाषी देखकर बोलीं, अरे दुर्भगापुत्र! बालक! क्या तू निर्ब्बुद्धिता प्रयुक्त हो राजाके क्रोड़में आरोहण करनेकी इच्छा करता है? रे अभागिनीगर्भसम्भूत! इस सिंहासनके ऊपर बैठनेका पुण्य तूने नहीं किया है। यदि कुछ पुण्य किया होता, तो अभागिनीके उदरसे क्यों जन्म लेता? इसी अनुमान द्वारा अपने अल्प पुण्यका विषय समझ देख। राजकुमार होकर भी हमारे गर्भको

तूने अलङ्कृत नहीं किया। इस उत्तम-गर्भसम्भूत सर्वोत्तम उत्तमको देख, धरापतिके जानूपर बैठकर किस प्रकार आदर गौरवसे वर्द्धित होता है। इस अत्युच्च राजसिंहासनपर बैठनेकी यदि इच्छा थी, तो सुरुचिके सुशोभन गर्भको परित्यागकर गर्भमें वास क्यों किया? राज-सभाके मध्य बालकध्रुवको, सुरुचि इसी प्रकार अतीव भर्त्सना करने लगीं। ध्रुव नयनविगलित जलधारा पान करते करते धैर्य्यवशतः कुछ भी न बोले। महिषी सुरुचिके सौभाग्यगौरवनियन्त्रित वह राजा भी उचितानुचित कुछ भी न बोले। शिशु ध्रुवने, सभादर्शन परित्यागपूर्व्वक शैशवोचित चेष्टा द्वारा शोक अप्रकाश रखकर राजाको प्रणामपूर्व्वक स्वगृहको गये। सुनीति, नीतिसम्पन्न बालक ध्रुवको देखते ही उनकी मुखश्रीसे समझ गईं, कि ध्रुव बहुत अपमानित हुए हैं। सुनीतिने सत्वर पासमें जाकर बारंबार ध्रुवका मस्तकाघ्राण करके मानो किञ्चित्म्लानभावापन्न ध्रुवका शान्तिपूर्व्वक आलिङ्गन किया। तदनन्तर, ध्रुव, जननी सुनीतिको अन्तःपुरमें निर्ज्जनमें देख बहुबार दीर्घ उष्ण निश्वास परित्यागपूर्व्वक जननीके सम्मुख रोदन करने लगे। माता सुनीतिने, अश्रुपूर्णनयनसे बालक ध्रुवको सान्त्वना करके और कोमल हस्तसे कोमल वसनाञ्चलसे मुख पोंछकर उनसे पूछा, कहो रोते क्यों हो? शिशु! राजाके रहते किसने तुम्हारा अपमान किया है? अनन्तर, ध्रुवने जलसे कुल्ला करके और ताम्बूल ग्रहण करके जननीके अनिर्व्वन्ध पूछनेपर उनसे कहा, "जननि! मैं तुमसे पूछता हूं मुझे ठीक उत्तर दो; तुम और सुरुचि दोनो ही महाराजकी भार्य्या हो, भार्य्यात्व तुम्हारा दोनोका समान है, तब सुरुचि राजाकी प्यारी क्यों हैं? और मा! तुम राजाकी अप्रिय क्यों हो? उत्तम् और मैं दोनो राजकुमार हैं, कुमारत्व हमलोगोंका उभयका ही समान है, तथापि सुरुचिगर्भ सम्भव होकर उत्तम, उत्कृष्ट क्यों हुआ? और मैं ही अपकृष्ट क्यों हुआ? तुम मन्दभागिनी क्यों हुई? और सुरुचि सुगर्भा क्यों हुई? राजाका आसन उत्तम होके योग्य क्यों है? और हमारे योग्य क्यों नहीं है? हमारा पुण्य अल्प क्यों हुआ? और उत्तमका पुण्य उत्तम किस प्रकार हुआ? राजनीतिज्ञप्रवरा सुनीति, बालक ध्रुवके इस प्रकार नीतियुक्त वाक्य श्रवणानन्तर धीरे धीरे किञ्चित् दीर्घश्वास परित्यागपूर्व्वक बालककी कोपशान्तिके लिये सापत्न रोष मनमें न लाकर स्वाभाविक मधुर वाक्यसे कहने लगीं, "मेरे सुबुद्धि! मैं विशुद्ध अन्तःकरणसे तुमसे सब बातें कहती हूं। जो हुआ है, उससे अपमान मनमें न करना। सुरुचिने जो कहा है, वह समस्त सत्य है, मिथ्या नहीं। सुरुचि,

राजाकी महिषी हैं; रानियोंमें सुरुचि ही राजाकी प्यारी हैं। बेटा! सुरुचिने जन्मान्तरमें जो असीम पुण्य उपार्जन किया है, उसीकी प्रबलतासे राजा उसके प्रति अतीव सुरुचिसम्पन्न हैं। मेरे सदृश मन्द-भाग्यगण, राजाकी सामान्य रमणीगणमें अवस्थित हैं। 'राजपत्नी' कहकर केवल उन लोगोंकी ख्याति है। राजाकी रुचि इन सब रमणियोंपर नहीं होती। उत्तमने और बहु पुण्यपुञ्जके फलसे उस पुण्यवती माताके उत्तम गर्भमें वास किया है; अतएव वही राजसिंहासनके योग्य है। चन्द्रतुल्य आतपत्र, शुभ्र चामरद्वय, उच्च राजसिंहासन, मदमत्त कुञ्जरगण, शीघ्रगामी अश्वसमूह, आधिव्याधिविवर्ज्जित जीवन, निष्कण्टक उत्तम राज्य, श्रेष्ठता, हरिहर पूजा, विपुल कला-ज्ञान अध्ययन, अजेयता, षड्रिपुविजय, स्वभावतः सात्त्विक बुद्धि, कारुण्यपूर्ण दृष्टि, मधुर वाक्य, कार्य्यमें अनालस्य, गुरुजनमें नम्रता, सर्व्वत्र शौचध्यान, सदा परोपकार, तेजस्विनी मनोवृत्ति, सतत अनृतभाषिता, सभाप्राङ्गणमें पाण्डित्य, रणाङ्गनमें प्रागल्भ्य, बन्धुगणके प्रति सरलता, क्रयविक्रयमें काठिन्य, रमणीके सहित कोमलताका व्यवहार, प्रजावात्सल्य, ब्राह्मणगणसे नित्य भीरुता, सदाचार वृत्ति-अवलम्बन गंगातीरमें वास, तीर्थमें या रणमें मृत्यु, याचकोंके प्रति विमुख न होना, विशेषतः शत्रुगणके समीपसे युद्धमें न भागना, परिजनगणके सहित भोग, दानद्वारा दिवसका साफल्य सम्पादन, सर्व्वदा विद्यामें आसक्ति, सदा माता पिताकी उपासना, सदा यशका सञ्चय, प्रति दिन धर्म्मोपार्ज्जन, स्वर्ग और मुक्तिकी सिद्धि, निरन्तर सदाचारानुष्ठान, सदा सत्सङ्ग, पितृबन्धु लोगोंके सहित मित्रता, इतिहासपुराण श्रवणमें सदा उत्साह, विपदमें भी परम धैर्य्य, सम्पत्ति समागममें स्थिरता, वाग्-विलासमें गाम्भीर्य्य, पात्रपाणि याचक लोगोंके प्रति वदान्यता और तपस्या, यम और नियम द्वारा ही केवल शारीरिक क्षमता,—पूर्व्वार्ज्जित तपस्यारूप तरुगणके यही समस्त फल हैं। अतएव हे महामते! तुम्हारे और मेरे अधिक तपस्या न करनेकी वजहसे ही हम दोनों राजसान्निध्य लाभकरनेपर भी राजलक्ष्मीके भागी नहीं हुए। अतएव मान और अपमानका हेतु केवल अपना अपना कर्म्म है। विधाता भी स्वकृत कर्म्म-फलको अन्य नहीं कर सकते। अतएव, पुत्र! तुम शोक मत करो, भाग्य-फलसे जो हो, वही अच्छा समझो।"

सुनीतिके इस प्रकार सुनीतिसम्पन्न वाक्य श्रवण करके सुनीतिपुत्र ध्रुव, प्रत्युत्तरमें कहने लगे,—जननि! सुनीति! मेरी बात तुम अव्यग्र भावसे श्रवण करो। हे कष्टभागिनि! बालक जानकर मेरी अवज्ञा मत करना। मा! यदि मैंने अत्यन्त पवित्र मनुवंशमें जन्म ग्रहण किया है, यदि मैं उत्तानपाद राजाका औरसंजात और

तुम्हारा गर्भसम्भव हूं और तपस्या यदि सर्व्वसम्पत्तिका कारण हो, तो निश्चय जानो, जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है, वही वही पद हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं। मा मोहके वश-वर्त्तिनी न होकर तपस्या करने मात्रकी अनुमति प्रदान करो और आशीर्व्वाद द्वारा अभिनन्दन करो, यह एक मात्र सहायता तुम दो। सुनीति, अपने गर्भसम्भूत कुमारको महावीर्य्य और महोत्साहसम्पन्न जानकर भी कहने लगीं,—स्तन्यपायिन् शिशु पुत्र! नवम वर्ष वयःक्रम तुम्हारा आज भी पूरा नहीं हुआ है, तुम्हें इस कार्य्यकी अनुमति मैं दे तो नहीं सकती, तथापि कहतीं हूं, कि सपत्नीवचनरूप भल्लास्त्र द्वारा विदीर्ण मेरे विशाल हृदयमें भी तुम्हारी वाष्पसमूह जलराशि क्षणकाल भी तो नहीं रहती, क्या करूं। शिशु! वही जल-राशि मेरे नयनपथ द्वारा क्षरित होती है और दुःखावह जलपूर्ण नदी समूह उत्पादन करनेको प्रवृत्त हुआ है। बेटा! तुम मेरे एक ही पुत्र हो; तुम मेरे जीवनके एक ही आधार हो; तुम मुझ अन्धीकी लकड़ी हो, तुम्हारे मुखकी ओर देखकर ही मैं जीती हूं। अभीष्ट देवता लोगोंके निकट प्रार्थना करके कितने कष्टसे तुमको पाया है। बाबा! तुम्हारा मुख-चन्द्र हमारे जिस समय नयनगोचर होता है, उस समय हमारा हृदयरूप क्षीर समुद्र आनन्ददुग्धसे परिपूर्ण होकर स्तनद्वयरूप वेलाभूमिको अतिक्रम करता है। तुम्हारे अङ्गसङ्गजनित सुखसन्दोहसे शीतल होकर मैं रोमाञ्चरूप वस्त्र ओढ़कर उत्तम शय्यामें सुखसे शयन करती हूं। तत्पश्चात् हे चन्द्रमुख! आचमन और ताम्बूल ग्रहण करके, तुम्हारे वदनके उष्ठाधररूप क्षीरसमुद्रसे समुत्थित अमृत-पान करके भी मेरी आशा नहीं मिटती। तुम्हारा मृदुसम्भाषण जब मेरे कानोंमें प्रविष्ट होता है, सपत्नीवाक्यव्यथा तभी अवगत होता है। बेटा! तुम्हारे अनेक क्षण निद्रित होनेसे मैं सोचती हूं, कि सू-र्य्योदयके पद्मकी तरह मेरा ध्रुव कब प्रबुद्ध होगा। वत्स! तुम जब क्रीड़ासङ्गी बालकोंके साथ खेलकर घर आते हो तब हमारे स्तनद्वय तुम्हें अमूल्य अर्घ्य प्रदान करनेके लिये उन्मुख हो उठते हैं। जब तुम महलसे बाहर जाते हो, तब तुम्हारे पद्मरेखाचिह्नित पदचिन्ह ही, हमारी गम-नाभिलाषी प्राणवायुके अवलम्बन होते हैं। पुत्र! जब जब तुम तीन चार कदम बाहर जाते हो, मेरा प्राण भी तब, तब कण्ठागत हो रहता है। पुत्र! सुधावर्षी मेघके तुल्य तुम्हारे बाहर विलम्ब करनेसे, मेरा मानस-पक्षी जानेके लिये अति आग्रह भावसे त्वरा करता है। इस समय तुम्हारे तपस्याको जानेसे मेरा अति सन्तप्त भावसे, कण्ठकाननप्रान्तमें तपस्या करता हुआ अवस्थान करे। ध्रुवने, इस प्रकार जननीकी

अनुज्ञा प्राप्तकर उनके चरणकमलद्वयको, अपने केशपाशरूप पङ्क द्वारा क्षण काल वेष्टितकर गमन किया। तब सुनीतिने भी दृष्टिरूप इन्दीवरमाल्य धैर्य्यसूत्र द्वारा गूंथकर ध्रुवको उपहार दिया। माता सुनीतिने, प्रथमें उन्हें रक्षा करनेके लिये दूसरेके लिये अनिवार्य्यवेग-सम्पन्न शताधिक अन्तरसे आशीर्व्वाद प्रेरण किये। महापराक्रम बालकने अपने महलसे बाहर होकर क्रमसे वनमें प्रवेश किया, अनुकूल वायु उनकी पथप्रदर्शक हुई। पवनविकम्पित तरुशाखाके प्रसारणाकुलीवन मानो उनको सप्रेम आह्वान करते हैं। ध्रुव वनमें प्रविष्ट हुये। जिन ध्रुवके माता ही देवता हैं, वह केवल राजपथ पहचानते थे। राजनन्दन अरण्य-पथ नहीं जानते थे। इसीसे क्षणकाल उन्होंने चिन्ता की। तत्पश्चात् ध्रुवने जैसेही नयन उन्मीलनपूर्व्वक सामने देखा, वैसे ही अरण्यके बीचमें अतर्कितगति सप्तर्षियोंको देख पाया। असहाय अनभिज्ञ व्यक्तिका भाग्य ही सहायकारी है; महावनमें, संग्राममें और गृहमें भाग्य ही सर्व्व विषय-का कारण है। कहां बालक राजपुत्र और कहां वह गहन वन; हे भवितव्यते! बल-पूर्व्वक तुम्हीं सबको आत्मसात् करती हो, तुमको नमस्कार है। जिसका जहां शुभ वा अशुभ होगा, भवितव्यता पाश आकर्षण करके उसको उस जगह अर्पण करती है। मनुष्य अपने बुद्धिबलसे एक तरह करने जाता है, भगवती भवतव्यताकी सहायतासे विधि उसको अन्य रूपसे परिणत करते हैं। वयःक्रम, विचित्र कार्य्य-सम्पादिका शक्ति, बल और उद्योग, पुरुषका हित नहीं कर सकती, एक प्राक्तन कर्म्म ही इसका मूल है! अनन्तर मानो अपने भाग्य सूत्रजाल कर्त्तृक आकृष्ट होकर उपनीत सूर्य्यकेसे अति तेजस्वी सप्तर्षिको देखकर ध्रुव आनन्दित हुए। उन लोगोंका प्रशस्त ललाट तिलकाङ्कित था, उङ्गलीमें कुशोपग्रह थे, वह सब उत्तम वसनसूत्रसे अलङ्कृत और कृष्णाजिन आसनपर उपविष्ट थे। उनके हाथमें अक्षसूत्र, नयन युगल किञ्चित किञ्चित निमीलित हैं, उत्तम धौत सूक्ष्म काषाय वस्त्र और उत्तरीय उनके अङ्गमें शोभाय मान था! ओह! विपन्मग्न प्रजाकुलका उद्धार करनेके लिये सप्तसागर ही मानो असमयमें एकत्र मिलित हुए थे! ध्रुव उन महाभाग सप्तर्षिके निकट उपस्थित होकर प्रणाम-पूर्व्वक प्रणतकन्धरसे और कृताञ्जलिपुटसे यह मनोहर वाक्य कहने लगी, हे मुनि-श्रेष्ठगण! आपलोग अवगत हूजिये, मैं उत्तानपाद राजाके औरससे और सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न हूं, मेरा नाम ध्रुव है। मैं निर्व्विण्णहृदयसे आप लोगोंके चरणकमल द्वारा सनाथीकृत इस वनमें आया हूं, मैं इस आचारका प्रायः कुछ भी

नहीं जानता। राजसम्पत्तिमें ही मन इतने दिन निविष्ट था। सप्तर्षिने उन महातेजा स्वभाव-मधुराकृति अपूर्व्वनीतिज्ञान-विभूषित मृदुगम्भीर-भाषी बालकको देखकर निकटमें उपवेशन कराकर अत्यन्त विस्मित भावसे उनसे पूछा, "अहे विशालाक्ष बालक! महाराज-कुमार! हमलोग विचार करनेपर भी नहीं समझते, कि तुम्हारे निर्व्वेदका क्या कारण है; अतएव तुम्हीं उसे कहो। अर्थचिन्ता अबतक तुम्हारे मनमें नहीं हुई है; माता वशमें हैं, अपमानकी सम्भावना कहां? शरीर भी नीरोग है; तब निर्व्वेदका क्या कारण है? अभिलषित वस्तुकी अप्राप्ति वशतः मनुष्योंमें वैराग्य होता है सही, किन्तु तुम सप्तद्वीपाधिपति राजाके कुमार हो; तुम्हारे पक्षमें इस प्रकार कैसे होगा? सबकी प्रकृति स्वभावतः भिन्न भिन्न है; अतएव, इस स्थानमें क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या बालक किसीका भी मनोगत भाव जाना नहीं जाता।" मनोरथ-सम्पन्न शिशु ध्रुव, सप्तर्षियोंके इस प्रकार सहज-प्रेमपूर्ण वाक्य श्रवण करके कहने लगे, हे मुनिश्रेष्ठगण! जननीने, राजसेवाके लिये मुझे (राज सभामें) भेज दिया, तत्पश्चात् मेरे राजाके क्रोड़में आरोहण करनेका अभिलाषी होनेपर, विमाता सुरुचिने, मुझे भर्त्सना की। मुझे और मेरी माताको धिक्कार देकर, अपने पुत्र उत्तमका उत्तमत्व प्रतिपादन करती हुई अपनी प्रशंसा करने लगीं, यही मेरे निर्वेदका कारण है। शिशुकी यह बात सुनकर वह ऋषिगण, परस्पर परस्परके प्रति अवलोकन करके क्षत्रियत्वकी कथा कहने लगी, "ओह! क्षत्रियके बालकमें भी इतना तेज है!" अहे! हमलोग तुम्हारे लिये क्या करें; तुम्हारी अभिलाषा क्या है? हमलोगोंको वह विदित हो, तुम उसी बातको हमलोगोंके कर्णगोचर करो। हे मुनिगण! हमारे भ्राता उत्तमोत्तम उत्तम, पितृदत्त प्रसिद्ध उत्तम राजसिंहासनपर आरोहण करें! हे सुव्रतगण! मैं आप लोगोंके निकट यही साहाय्य प्रार्थना करता हूं, कि वक्ष्यमाण विषयका आपलोग उपाय कह दें, मैं बालक हूं, इसके लिये मैं तो प्रायः कुछ भी नहीं जानता। और राजोंने जिसको भोग नहीं किया, अन्य पदसे जो वह उन्नत (श्रेष्ठ) है, इन्द्रादि देवगणको भी जो दुर्लभ है, वही दुरासद पद किस प्रकार लाभ किया जा सकता है? मैं पिताके प्रदत्तपदकी आकांक्षा नहीं करता, मैं निज भुजबलार्ज्जित उस पदकी आकांक्षा करता हूं; जो पिताके भी मनोरथातीत है। जो लोग पिताकी सम्पत्ति भोग करते हैं, वह लोग प्रायशः यशस्वी नहीं हैं; परन्तु पिताकी अपेक्षा अधिक सामर्थ्यका परिचय जिनसे पाया जाता है, वही नरोत्तम हैं। पिताका उपार्ज्जित विख्यात यश अथवा धन